UNIVERSAL LIBRARY
OU_178862
UNIVERSAL LIBRARY

सुलभ साहित्य-माला ★ पन्द्रहवाँ पुष्प

शरत्-साहित्य

(पन्द्रहवाँ भाग)

नारीका मूल्य, अनुराधा, महेश, पारस

१५

अनुवादकर्त्ता

रामचन्द्र वर्मा

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई.

प्रकाशक--
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

तीसरी बार
१९४६
मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
दि ओरियन्ट प्रिंटिंग हाउस
नवीवाड़ी, बम्बई २

नारीका मूल्य

मणि-माणिक्य बहुत मूल्यवान् वस्तुएँ हैं, क्योंकि वे दुष्प्राप्य हैं। इस हिसाबसे नारीका मूल्य अधिक नहीं है, क्योंकि यह संसारमें दुष्प्राप्य नहीं है। पानी नित्य ही काम आनेवाली चीज है और उसका कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अगर किसी समय पानीका नितान्त अभाव हो जाय, तो हम समझते हैं कि राजाधिराज भी एक बूँद पानीके लिए अपने मुकुटका श्रेष्ठ रत्न निकाल कर दे देनेमें आगा पीछा न करेंगे। इसी प्रकार, ईश्वर न करे, यदि किसी दिन संसारमें नारियाँ विरल हो जायँ, तो उस दिन इस बातका पता लग जायगा कि इनका यथार्थ मूल्य क्या है और उस दिन इस विवादका आखिरी निर्णय हो जायगा। पर आज ऐसा नहीं हो सकता। अभी तो वे सुलभ हैं।

लेकिन इनका दाम जाँचनेका एक रास्ता भी मिल गया है। अर्थात् यदि यह निश्चय किया जा सके कि पुरुषके लिए नारीकी कब, किस अवस्थामें और किस सम्बन्धसे कितनी अधिक आवश्यकता है, तो फिर कमसे कम स्लेट और कागजपर उसका हिसाब निकाला जा सकेगा, भले ही उसका नक़द दाम वसूल हो सके या न हो सके।

हम यह बात एक उदाहरण देकर स्पष्ट करते हैं। साधारणतः घरमें विधवा बहनकी अपेक्षा पत्नीकी अधिक आवश्यकता हुआ करती है और इसीलिए पत्नीका दाम भी अधिक होता है, पर जब स्त्री आसन्न-प्रसवा होती है, तब उसी विधवा बहनका दाम कुछ बढ़ जाता है, क्योंकि भोजन बनाने और परोसनेके लिए आदमीका अभाव होता है और उस समय छोटे बच्चोंको कौआ और बगला दिखलाकर कुछ खिलाने-पिलानेकी भी आवश्यकता होती है।

इस प्रकार यह पता चलता है कि भार्या होनेकी अवस्थामें नारीका जितना मूल्य होता है, बहन और वह भी विधवा होनेकी अवस्थामें उसकी अपेक्षा कम होता है। यह बहुत ही सीधी-सादी और साफ बात है। इसके विरुद्ध कोई तर्क नहीं चल सकता। अगर आदमी स्लेट और पेन्सिल लेकर बैठ जाय और हिसाब लगाने लगे तो शायद कौड़ी-छदाम तकमें यह बतलाया जा सकता है कि नारीको किस विशेष अवस्थामें उसका क्या मूल्य होता है।

अब मान लो कि यह तो एक तरहसे मालूम हो गया कि अवस्था-विशेषमें नारीका मूल्य क्या होता है, लेकिन फिर यदि बात चले तो कहा जा सकता है कि जब नारीके लिए सोनेकी लंका नष्ट हो गई, ट्राय-राज्य विध्वंस हो गया, और भी छोटे-बड़े न जाने कितने राज्य अब तक नष्ट हो चुके होंगे, जिनका वर्णन इतिहासने लिपिबद्ध नहीं कर रक्खा है, तब नारीत्वका साधारण मूल्य किस प्रकार निर्धारित किया जा सकता है? उस समय नारीका इतना बड़ा कौन-सा प्रयोजन था जिसके लिए साम्राज्य तकका विनाश कर डालनेसे मनुष्य पराङ्मुख नहीं हुआ और अपने प्राण तक देनेमें उसने आनाकानी नहीं की?—तुम्हारी स्लेटमें जगह ही कितनी है जो तुम इसका मूल्य अंकोंमें निकाल सकोगे? ऊपर ऊपरसे देखनेपर यह बात अस्वीकृत नहीं की जा सकती है कि मनुष्यने जब यह किया तब उसने राज्यकी ओर नहीं देखा। लेकिन फिर भी जो कुछ किया, वह कहाँतक नारीकी ओर देखकर किया और कहाँतक स्वयं अपनी असंयत उच्छृंखल प्रवृत्तिकी ओर देखकर किया, इसका उत्तर हमें कौन देगा?

नारीका मूल्य क्या है? अर्थात् वे कहाँतक सेवा-परायणा, स्नेहशील, सती और दुःख तथा कष्ट सहन करते हुए मौन रहती हैं? अर्थात् उसके द्वारा मनुष्यको कहाँ तक सुख और सुभीता हो सकता है और कहाँ तक वे रूपसी हैं? पुरुषकी लालसा और प्रवृत्तिको वे कहाँ तक निबद्ध तथा तृप्त रख सकती हैं?—हम यह बात पृथ्वीका इतिहास खोलकर प्रमाणित कर सकते हैं कि स्त्रियोंका मूल्य निश्चित करनेके लिए इसके सिवा और कोई मार्ग है ही नहीं।

युरोपवाले जब इस देशके लोगोंसे आँखें दिखलाकर कहते हैं, "तुम लोग नारीका मूल्य नहीं जानते, उनकी मर्यादा नहीं समझते, आमोद और आह्लादमें उन्हें सम्मिलित नहीं होते देते और उन्हें कोनेमें बन्द करके रखते हो। इसलिए तुम लोग बर्बर हो।" तब मनु आदि ग्रन्थोंसे 'पूजार्हा' आदि श्लोक

निकाल कर हम लोग उन्हें उत्तर देते हुए उलटे उन्हींसे कहते हैं,—"नहीं, हम लोग अपनी माँ-बहनोंके मुँहपर रंग पोतकर उन्हें शैम्पेन और क्लारेट पिलाकर और इस प्रकार उन्हें उत्तेजित करके सभा-समितियोंमें नचाते नहीं फिरते। हम लोग घरके कोनेमें ही रखकर उनकी पूजा करते हैं। तुम लोगोंके बाल डान्सकी पोशाक देखकर हम लोग मारे लज्जाके सिर झुका लेते हैं और तुम्हारा नाच देखकर आँखें बन्द कर लेते हैं। हम लोग बर्बर बनकर अपनी माँ-बहनोंको सदा घरके कोनेमें बन्द रखेंगे लेकिन उनकी मर्यादा बढ़ानेके लिए प्रकाश्य रूपसे भीड़के सामने नचा नहीं सकेंगे।" अवश्य ही युरोपवाले इस तिरस्कारकी परवा नही करते। प्रसिद्ध आचार्य प्रोफेसर मैस्पेरो (=Prof Maspero) ने प्राचीन मिस्रकी नारियोंकी सभ्यताके प्रसंगमें अपनी Dawn of Crvilisation (=सभ्यताका प्रभात) नामक पुस्तकमें एक स्थानपर लिखा है कि मिस्रकी महिलाएँ अपनी छाती प्रायः खोलकर सड़कोंपर निकला करती थीं, इसलिए अवश्य ही वे यथेष्ट उन्नत थीं। क्योंकि "Like Europeans they must have coveted public admiration." (युरोपियनोंकी भाँति वे भी जनतासे अपनी प्रशंसा करनेकी इच्छुक रही होंगी।) वाला कौशल अव्यर्थ है, यह अस्वीकार करनेसे काम नहीं चल सकता।

अपनी महिलाओंके सम्बन्धमें वे तो यह बात बिना किसी प्रकारके संकोचके कह गये, लेकिन इस admiration शब्दका देशी भाषामें ठीक ठीक अनुवाद करनेमें मारे लज्जाके हमार सिर झुका जाता है। जो हो; हम लोगोंका उत्तर भी सुननेमें कुछ बहुत बुरा नहीं है।—"हम लोग उन्हें भीड़में नचा नहीं सकेंगे" और "घरके कोनेमें हम उनकी पूजा करते हैं," इसलिए बातोंकी लड़ाईमें थोड़ी देरके लिए हम लोग एक तरहसे जीत जाते हैं; और मनु तथा पराशरको अपने सिरपर रखकर और आपसमें एक दूसरेकी पीठ ठोंककर घर लौट जाते हैं।

अवश्य हीं हम नहीं कहते कि साहब लोगोंसे विवाद छिड़नेपर आप उनके सामनेसे हट जाइए; लेकिन घर लौटकर यदि हम दोनों भाई आपसमें बातचीत करें और कहें —"भाई, हम लोग पूजा तो करते हैं, लेकिन यह तो बतलाओ कि किस तरह करते हैं?" तब ऐसी बहुत-सी बातोंके निकल पड़नेकी सम्भावना रहती हैं जिन्हें बाहरके लोगोंको सुनानेसे किसी तरह काम नहीं चल सकता। इसलिए हम लोगोंकी यह आलोचना एकान्तमें ही ठीक है

यह बात सभी देशोंके पुरुष समझते हैं कि सतीत्वसे बढ़कर नारीके लिए और कोई गुण नहीं हो सकता। क्योंकि पुरुषोंके लिए यही सबसे अधिक उपादेय सामग्री है। और अपने स्वामीकी आज्ञाके बाहर होकर,—फिर चाहे स्वामी कितना ही बड़ा पाखंडी क्यों न हो,—मन ही मन उसे तुच्छ समझने और उसकी अवहेला करनेसे बढ़कर उनके लिए और कोई दोष नहीं है। इसमेंसे हरएक बात दूसरी बातकी पूरक और आवश्यक अंग वा निकलनेवाला निष्कर्ष (= Corollary) है। रामायण, महाभारत और पुराणों आदिमें इस बातकी बार बार आलोचना की गई है कि यह सतीत्व नारीका कितना बड़ा धर्म है। इस देशमें इस विषयपर इतना अधिक कहा जा चुका है कि अब इस सम्बन्धमें और कुछ कहनेके लिए बाकी ही नहीं रह गया है। यहाँ तो स्वयं भगवान् तक इस सतीत्वकी चपेटमें आकर अनेक बार अस्थिर हो चुके हैं।

लेकिन ये सारे तर्क एक-तरफा ही हैं, केवल नारीके लिए ही हैं। ढूँढ़नेपर भी इस बातका कहीं कोई पता नहीं चलता कि पुरुषोंके सम्बन्धमें भी यहाँ कोई विशेष बाध्य-बाधकता थी: और अगर हम साफ तौरसे यह बात कहें कि इतने बड़े प्राचीन देशमें इस विषयमें पुरुषोंके सम्बन्धमें कहीं एक शब्द तक नहीं है, तो शायद हाथा-पाईकी नौबत आ जायगी। नहीं तो यह बात हम साफ तौर पर कह भी डालते। अँगरेज भी कहते हैं कि "Chastity" (आचरणकी पवित्रता) होनी चाहिए, पर वे इसके द्वारा पुरुष और स्त्री दोनोंका ही निर्देश करते हैं और हमारे देशमें जिस शब्दका अर्थ 'सतीत्व' होता है, वह केवल नारियोंके लिए ही है। यह ठीक है कि शास्त्रकार लोग वनों और जंगलोंमें निवास करते थे, लेकिन फिर भी वे लोग समाजको पहचानते थे और इसीलिए वे लोग एक शब्द बनाकर भी अपने जाति-भाइयों अर्थात् पुरुषोंको inconvenience में (=संकटमें या कठिन परिस्थितिमें) नहीं डाल गये। वे इस बातके लिए काफी जगह रख गये हैं कि नारीके सम्बन्धमें पुरुषकी प्रवृत्ति जितना चाहे उतना खुलकर खेल सके। वे कह गये हैं कि पैशाच विवाह भी विवाह है! पुरुषोंके साथ उनकी इतनी अधिक सहानुभूति है, उनपर उनकी इतनी अधिक दया है! अगर उन शास्त्रकारोंमें इतनी दया न होती तो क्या पुरुष उन्हें कभी मानते? या आज इस बीसवीं शताब्दीमें भी उन शास्त्रकारोंके पास यह पूछनेके लिए

दौड़े जाते कि इस बीसवीं शताब्दीमें भी विधवा-विवाह करना उचित है या नहीं ? वे न जाने कबके सब पोथी-पत्रे उठाकर नदीमें डुबा देते और अपने मनके मुताबिक एक नया शास्त्र बना डालते।

जो हो, निश्चित यही हुआ था कि नारीके लिए तो सतीत्व है, परन्तु पुरुषके लिए नहीं। और इस सतीत्वका चरम रूप हो गया था सहमरण या सती होना।

इतिहासमें यह नहीं लिखा है कि इस सहमरणका कब और किस प्रकार सूत्रपात हुआ था। मालूम होता है कि रामायणमें अपने पतिकी मृत्यु होनेपर कौशल्याने एक बार गुस्सेमें आकर सहमरण करनेका डर दिखलाया था। लेकिन अन्तमें उनका वह गुस्सा शान्त हो गया था और दशरथको अकेले ही जलना पड़ा था! इस ग्रन्थमें इस विषयमें और कोई वाद-प्रतिवाद नहीं सुना गया। इसीसे अनुमान होता है कि यद्यपि लोग इस सहमरणसे परिचित तो थे, परन्तु फिर भी वह कार्य-रूपमें उतना प्रचलित नहीं हो पाया था। हम यह नहीं कह सकते कि महाभारतमें माद्रीके सिवा और भी किसीने यह काम किया था। कुरुक्षेत्रके युद्धके उपरान्त कुछ सहमरण हुए थे, परन्तु वे कम हैं। कमसे कम यह बात तो निश्चित ही है कि उस समय पुरुष सहमरण करानेके लिए स्त्रियोंके पीछे नहीं पड़ गये थे; और यह भी देखनेमें आता है कि असभ्य जातियोंमें ही इस प्रथाका विशेष प्रचार था। दाक्षिणात्यमें सतियोंके बहुतसे कीर्ति-स्तम्भ हैं। आफ्रिका तथा फीजी द्वीपमें सौभाग्यसे कीर्ति-स्तम्भोंकी बला नहीं पहुँची थी; नहीं तो उन देशोंमें अब तक शायद पैर रखने तकको जगह बाकी न रह जाती। एक एक डाहोमी सरदारकी मृत्यु होनेपर उसकी सैकड़ों विधवाओंको उसके समाधि-स्थानके आस-पास वृक्षोंकी डालियोंमें फाँसी लटका दिया जाता था, अर्थात् उन विधवाओंको भी पतिके साथ पर-लोक भेजनेकी व्यवस्था कर दी जाती थी। पर-लोकका हाल तो उतने स्पष्ट रूपसे किसीको मालूम होता नहीं था, इसलिए सोचा जाता था कि कहीं ऐसा न हो कि मरनेवालोंको वहाँ स्त्रियोंके अभावके कारण कष्ट हो! जो होशियार रहता है, उसकी कभी कोई हानि नहीं होती; इसलिए यह समय रहते ही होशियार हो जाना था! हम समझते हैं कि हम लोगोंके देशमें भी सहमरणका मूल शायद यही था। जिन लोगोंने राजा अशोकका राज्य देखा था, वे लोग कहते हैं कि उन दिनों आर्यावर्तमें विधवाको पतिके साथ जलानेकी प्रथा प्रचलित नहीं थी। हाँ, दाक्षिणात्यमें थी। जब आर्यावर्त्तके आर्योंने यह खबर सुनी, तब

उन लोगोंने सोचा कि असभ्य भले ही असभ्य हों, पर उन लोगोंने तरकीब खूब बढ़िया सोच निकाली है ! ठीक ही तो है, अगर सचमुच पर-लोक कोई चीज़ हो, तो फिर वहाँ सेवा कौन करेगा ?—बस, वे लोग भी उठकर इस प्रथाके पीछे पड़ गये और उन्होंने इतनी विधवाएँ जला डालीं कि जिन्हें देखकर शायद स्पेनके राजा फिलिपका मन भी ललचा जाता ।

इस प्रकार 'महाभागा' नारियोंकी पूजाके उपकरण प्रस्तुत होने लगे। लेकिन एक दिन जिसे अपने वंशकी हित-कामनाके लिए अपने घरमें बुलाकर रक्खा था; जिसके लिए शायद युद्ध तक करना पड़ा था;—छल-कपट—झूठी बातें और यहाँ तक कि चोरी भी की थी; उस इतने बड़े उपकारी जीवकी अब हत्या कैसे की जाय ? इसके अनेक कारण हैं । पहला कारण तो यह है कि पर-लोकमें सेवा कौन करेगा ? और फिर दूसरा कारण यह है कि दुर्भाग्यसे जो स्त्री विधवा हो गई, उसके द्वारा अब और कौन-सा विशेष उपयोगी कार्य हो सकेगा ? बल्कि उलटे जब उसके कारण भविष्यमें अशान्ति और उपद्रवकी सम्भावना है, तब समय रहते ही सतर्क हो जानेकी आवश्यकता है । अब यहाँ यदि इस बातका ध्यान रक्खा जाय कि व्यक्ति-विशेषके लिए नारी कुछ सम्बन्ध विशेषके कारण ही मूल्यवान् है, तो बहुत-सी बातें आपसे आप ही साफ हो जायँगी । लेकिन एक और सम्बन्धके बारेमें कुछ आपत्ति हो सकती है; और वह है जननीका सम्बन्ध । इसकी आलोचना बादमें होगी ।

जिन लोगोंने इतिहास पढ़ा है, वे जानते हैं कि विधवा-विवाहका संसारके किसी देशमें कोई विशेष आदर नहीं हुआ है । सभी लोग इसे कुछ न कुछ अश्रद्धाकी ही दृष्टिसे देखते आये हैं । ऐसी अवस्थामें जिस देशमें यह प्रथा बिलकुल ही निषिद्ध हो, यदि उस देशमें विधवाको जलाकर मार डालना ही विशेष हितकर अनुष्ठान माना जाता हो, तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । अवश्य ही यह बात स्वीकृत करनेमें बहुत लज्जा होगी, लेकिन जब पतिहीना नारीकी यहाँ कोई विशेष आवश्यकता ही नहीं है, तब सिवा जबर्दस्तीके और किसी तरह इस बातको अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इस प्रथाका मूल यह इच्छा ही है कि यदि किसी प्रकार उस पतिहीना नारीको उस पार पहुँचाया जा सके, तो उसके स्वामी महाशयके काममें आनेकी बहुत कुछ सम्भावना हो सकती है । और फिर इसके सिवा यह भी देखा जाता है कि जिन समस्त असभ्य देशोंमें स्वामीकी मृत्युके साथ स्त्रीका

वध होता है, उनमें भी लोगोंका यही परम दृढ़ विश्वास होता है। वे लोग भी समझते हैं कि मृत व्यक्तिकी आत्मा किसी आसपासकी झाड़ी या पेड़-पौधेपर ही बैठी रहती है; इसलिए उसके पास उसकी संगिनीको भेज देनेसे उपकार ही होगा।

लेकिन हम लोगोंका यह ऐसा सुसभ्य प्राचीन देश है जहाँ आत्माके स्वरूप तकका निर्णय हो चुका था, और ईश्वरकी लम्बाई-चौड़ाई तक पूरी तरहसे नापी जा चुकी थी। तब उस देशके सम्बन्धमें यह बात बहुत ही आश्चर्यकी है कि बड़े बड़े पंडित लोग भी यह समझते थे और विश्वास करते थे कि स्त्रीका वध करके उसे पतिके साथ भेजा जा सकता है! हाँ, यदि यह नारी-पूजाकी विशेष पद्धति हो गई हो, तो बात दूसरी है। [पुरुषोंने समझा दिया था कि सहमृता होना सतीका परम-धर्म है। मनुने भी कहा है कि पति-सेवाको छोड़कर स्त्रीके लिए और कोई काम ही नहीं है।] उसने इस लोकमें भी पुरुषकी सेवा की है और परलोकमें भी जाकर वह उसकी सेवा करेगी। लेकिन इस झंझटमें उन्होंने नहीं पड़ना चाहा कि वह परलोकमें कब पतिकी सेवा करेगी और कितने दिनों बाद करेगी। पुरुष विलम्ब नहीं सह सकता और इसीलिए उसने स्त्रीके मरणके सम्बन्धमें कुछ जल्दी करना और कुछ सतर्क रहना आवश्यक समझा। शास्त्रोंने कहा है कि नारी केवल मातृत्वके कारण ही पूजनीया होती है, इसलिए जब मातृत्वका सुयोग ही न रह गया हो, तब उसे लेकर और क्या होगा? इसके बाद छोटे और बड़े बहुतसे कीर्ति-स्तम्भ बने हैं और कथा-कहानियों तथा दृष्टान्तोंमें स्त्रीका दाम बहुत बढ़ गया है। पुरुष केवल अपने सुख और सुभीतेके सिवा,—फिर चाहे वह सुख और सुभीता वास्तविक हो और चाहे काल्पनिक ही हो,—और किसी बातकी ओर दृष्टिपात नहीं करता। लेकिन इस बातको दबाकर वह गर्व-पूर्वक प्रचार किया करता है कि "जिस देशमें स्त्रियाँ हँसती हँसती चितापर जाकर बैठ जाया करती थीं और अपने स्वामीके चरण-कमलोंको अपनी गोदमें लेकर प्रफुल्लित वदनसे अपने आपको भस्मसात् कर दिया करतीं थीं—!" इत्यादि इत्यादि।

लेकिन यदि यह सच था, तो फिर स्वामीकी मृत्युके बाद ही उसकी विधवाको एक कटोरा भांग और धतूरा पिलाकर नशेमें बदहोश क्यों कर दिया जाता था? वह जब श्मशानकी ओर जाती थी तब कभी तो हँसती

थी, कभी रोती थी और कभी रास्तेमें ही जमीनपर लोटकर सो जाना चाहती थी। यही उसकी हँसी थी और यही उसका सहमरणके लिए जाना था! इसके बाद उसे चितापर बैठाकर कच्चे बाँसकी मचिया बनाकर दबा रक्खा जाता था, क्योंकि डर रहता था कि शायद सती होनेवाली स्त्री दाहकी यन्त्रणा न सह सके! चितापर बहुत अधिक राल और घी डालकर इतना अधिक धुआँ कर दिया जाता था कि जिसमें उसकी यन्त्रणा देखकर कोई डर न जाय और दुनिया-भरके इतने अधिक ढोल-ढक्के, करताल और शंख आदि जोर जोरसे बजाये जाते थे कि कोई उसका चिल्लना, रोना-धोना या अनुनय-विनय न सुनने पावे! बस यही तो था सहमरण!

हम जानते हैं कि यहाँ अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ होंगी,— लोग तरह तरहकी बातें कहेंगे। सबसे पहले तो यही कहा जायगा कि यहाँके लोगोंका सचमुच यह विश्वास था कि जो स्त्री अपने पतिके साथ सती होती है, उसे परलोकमें अपने स्वामीके साथ रहना मिलता है और इसलिए यह अनुष्ठान किया जाता था। यदि थोड़ी देरके लिए यह बात ठीक ही मान ली जाय तो इसके सम्बन्धमें हमारा उत्तर यह है कि इस बातकी आलोचना करनेसे कोई लाभ नहीं है कि इस देशके अशिक्षित और सामान्य लोग क्या विश्वास रखते थे और क्या नहीं रखते थे, क्योंकि वे लोग केवल भद्र और शिक्षित वर्गका अनुकरण ही करते थे। किन्तु जिस देशमें उस समय भी बड़े बड़े महामहोपाध्याय अपने विद्यालय बनाकर सांख्य और वेदान्त पढ़ाया करते थे; जन्मान्तरपर विश्वास रखते थे, यह कहा करते थे कि कर्मोंके फलके अनुसार ही जीवोंको स्थावर, जंगम और पशु आदिका जन्म प्राप्त होता है और देवयान और पितृयान आदि पथोंका निर्देश करते थे, उस देशमें हमारे लिए यह बात स्वीकार करना बहुत ही कठिन हो जाता है कि वे लोग सचमुच यह विश्वास करते थे कि पृथ्वीपर लोगोंको अपने कर्मोंका चाहे जो और जैसा फल मिलता हो, लेकिन दो प्राणियोंको एक साथ बाँधकर जला देनेसे परलोकमें दोनोंके एक साथ रहनेका सुभीता हो जाता है!

लेकी साहबने लिखा है कि जिस समय अँग्रेजोंने यह प्रथा उठा दी उस समय टोलों या विद्यालयोंके पंडित-समाजने खूब चिल्लाकर और शोर मचाकर, सभा-समितियाँ करके और राजे-रजवाड़ोंसे चन्दा लेकर विलायत तक अपील की। उस अपीलमें कहा गया था कि यह प्रथा बन्द कर दी

जायगी तो हिन्दू-धर्म जड़से ही उखड़ जायगा और हिन्दू एकदमसे धर्मच्युत हो जायँगे ! वाह, कैसी बढ़िया नारी-पूजा है !

इसके बाद जब उन लोगोंकी अपील बिलकुल ना-मंजूर हो गई, और यह बात अच्छी तरह सबकी समझमें आ गई कि अब ढोल-ढक्के, करताल और शंखके शब्दोंसे पुलिसके सिपाहियोंके कान बन्द नहीं किये जा सकेंगे और ढेर-सी राख जलाकर नदीका सारा किनारा अन्धकारमय कर देनेपर भी दारोगाकी दृष्टि किसी तरह बचाई नहीं जा सकेगी, तब धर्म-ध्वजियोंको भी यह बात समझनेमें देर न लगी कि अगर सनातन हिन्दू-धर्मकी बुनियाद दो-चार इंच धँस जाय, तो भी किसी तरह काम चल सकता है, लेकिन पुलिसके चक्करमें पड़नेसे नहीं चलेगा !

इसलिए अब लोगोंको दूसरा रास्ता ढूँढ़ना पड़ा। राजाने तो अपना काम कर डाला, लेकिन अब समाज-रक्षकोंका काम बढ़ गया। उन लोगोंने सोचा कि ऐसी आफतके समय चुपचाप बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा। वे लोग कहने लगे कि म्लेच्छोंने हमारे धर्मपर ध्यान नहीं दिया और कानून बना दिया। लेकिन हम लोग भी सहजमें नहीं छोड़ेंगे। हम यहीं बैठे बैठे ही अपनी विधवाओंको 'देवी' बना डालेंगे। इसके बाद शास्त्रोंमेंसे ऐसे बहुतसे पुराने श्लोक ढूँढ़ निकाले गये जिनका इतने दिनों तक कभी कोई व्यवहार नहीं हुआ था और जो न जाने कहाँ पड़े हुए थे, और उन्हीं श्लोकोंका आधार लेकर, लोकाचारकी दोहाई देकर और सुनीतिकी पुकार मचाकर जितने प्रकारकी कठोरताओंकी कल्पना की जा सकती थी, वे सभी कठोरताएँ सद्य-विधवाओंके सिरपर लादकर उन्हें नित्य थोड़ा थोड़ा करके 'देवी' बनानेका काम शुरू कर दिया गया ! वह आभूषण आदि न पहने, वह दिन-रातमें केवल एक बार खाए, वह हड्डियाँ तोड़ डालनेवाला परिश्रम करे, थानमेंसे फाड़ी हुई और बिना किनारीकी धोती पहने,—क्योंकि वह 'देवी' जो ठहरी ! पुरुष चिल्ला चिल्लाकर कहने लगे कि, हमारी विधवाओंकी तरहकी 'देवियाँ' भला और किस समाजमें हैं ! फिर भी उस 'देवी' को विवाहवाले घरमें या उसके मंडपके पास नहीं जाने दिया जाता था; क्योंकि डर था कि कहीं एक देवीका मुँह देखकर और कोई देवी न हो जाय ! मंगल-उत्सवमें तो देवी बुलाई नहीं जाती थी, हाँ, वह बुलाई जाती थी श्राद्धका पिण्ड पकानेके लिए !

उसकी माँ उसे देखकर, या यह हो सकता है कि उसका कष्ट न सह सकनेके कारण बीमार पड़कर मर गई। तब उसके बापने पचास वर्षकी उम्रमें बिलकुल लाचारी हालतमें पड़कर,—बिलकुल इच्छा न होनेपर भी,—या लोगोंके अनुरोधकी अवज्ञा न कर सकनेके कारण,—उससे भी छोटी उम्रकी एक लड़कीके साथ ब्याह कर डाला और उसे घरमें ला रक्खा। घरकी विधवा लड़कीको हुक्म हो गया कि ज़रा सबेरे सबेरे यानी दस बजनेसे पहले ही रसोई बनाकर अपनी नई माँको खिला-पिला दिया करे, नहीं तो शायद उस 'छोटी लड़की' का पित्त बिगड़ जायगा! हम समझते हैं कि यहाँ यह बात अधिक स्पष्ट करके और समझाकर बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि इस घरमें विधवा लड़की और नई बहूका मूल्य एक ही बटखरेसे तौलकर नहीं लगाया जा सकता। बाप विवाह करके बहूको घर लाये हैं, वे प्राचीन प्रतिष्ठाप्राप्त और बड़ी पाठशालाके अध्यापक हैं, उनके शास्त्र-ज्ञानकी भी सीमा नहीं है और उन्होंने विधवा-विवाहके विरुद्ध एक पुस्तक भी लिखी है। उनके सम्बन्धमें इस प्रकारकी चाहे जितनी ही बातें क्यों न हों, लेकिन फिर भी जो सज्जन एक ही घरमें रहनेपर भी अपनी विधवा लड़कीसे भी छोटी उम्रकी एक लड़कीको पत्नीके रूपमें ग्रहण कर सकते हैं, उनके सम्बन्धमें यह बात किसी तरह हमारी समझमें नहीं आती कि वे आख़िर किस तरह यह बात ज़बानपर लाते हैं कि हम अपने घरके कोनेमें नारी-जातिकी पूजा करते हैं। और जो आदमी इस तरहका काम नहीं करता, वह तुरन्त कह बैठेगा कि जो लोग पूजा करते होंगे, वे करते होंगे; हम तो नहीं कर सकते! अर्थात् वह इस बातपर विचार ही नहीं करना चाहेगा कि ऐसी अवस्थामें वह स्वयं क्या करेगा। अवश्य ही इस दुर्घटनाके घटित होनेसे पहले किसीको यह बात स्वीकृत करनेके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, लेकिन फिर भी इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि सौमें निन्नानवे पुरुष ठीक ऐसा ही करते हैं। एक स्त्रीके जीवित रहते हुए भी पुरुष अपने घरमें और सौ स्त्रियोंको लाकर रख सकता है, लेकिन यदि बारह बरसकी बालिका बिधवा हो जाय, तो उसे देवी ही होना पड़ेगा! अब यह बात लिखकर पूरी तरह नहीं बतलाई जा सकती कि इस व्यवस्थाने इस देशकी समस्त नारी जातिको कितना अधिक हीन कर रक्खा है और उन्हें खींचकर कितने अ-गौरवके स्थानपर पहुँचा दिया है।

अच्छा, इस बातको जाने दीजिए। अभी हम लोगोंमें सहमरणकी बात-चीत

हो रही थी और उसी सूत्रसे पुरुषोंकी नारी-पूजाके उद्यमका प्रसंग चल पड़ा था। लेकिन इसके सम्बन्धमें कोई सज्जन प्रतिवादपूर्वक कह सकते हैं कि क्या इस देशमें समस्त ही सतियोंको बलपूर्वक सहमरणके लिए बाध्य किया जाता था? क्या स्वेच्छापूर्वक आत्म-विसर्जन नहीं होता था? क्या राजपूत स्त्रियोंके जौहर व्रतका हाल जगत् नहीं जानता है? अभी तो उस दिनकी ही बात है कि एक बंगालीके घरमें स्वामीकी मृत्युका समाचार सुनते ही स्त्री अपने सारे शरीरपर मिट्टीका तेल छिड़ककर जल मरी थी! ऐसी पति-भक्ति और ऐसे गौरवकी बात क्या और किसी देशमें सुनाई पड़ती है? सुन न भी पड़ती हो, तो भी इससे पुरुषके यशकी कोई वृद्धि नहीं होती और न इससे यही बात प्रमाणित होती है कि उस देशमें नारीके प्रति पुरुषोंमें विशेष श्रद्धा और भक्ति है। और फिर इसके सिवा चाहे बल-पूर्वक ही हो, चाहे कौशल-पूर्वक ही हो, और चाहे नशेमें बेहोश करके ही हो, क्या केवल एक स्त्रीको भी इस प्रकार जलाना किसी देशके लिए यथेष्ट नहीं है?

उस दिन एक स्त्रीने अपने सारे शरीरपर मिट्टीका तेल छिड़ककर जो आत्म-हत्या की थी, बहुत-से लोगोंने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि हाँ, इसे सती कहते हैं! इसका मतलब यही है कि यदि इसी प्रकार और भी दो चार स्त्रियाँ सती हों तो वे लोग प्रसन्न होंगे। इन बातोंसे केवल इसी बातका पता नहीं चलता कि इस देशके पुरुषोंके मनकी गति किस ओर है, बल्कि इसके साथ ही साथ यह बात समझमें आ जाती है कि ऐसे देशमें पुरुषोंके साथ रहकर नारीके मनकी गति भी स्वभावतः किस ओर झुक पड़ेगी। नारियाँ जिनके आश्रित होंगी, उन्हें वे प्रसन्न करना ही चाहेंगी। अगर हम घरमें सभी लोगोंको एकवाक्य होकर इस प्रकारकी प्रशंसा करते हुए सुनें, तो ऐसी अवस्थामें यदि सुख्याति और वाहवाही प्राप्त करनेका हमारा लोभ भी प्रबल हो उठे, तो यह कोई अस्वाभाविक बात नहीं है और फिर जब इसमें ऊपरसे धर्मकी भी कुछ गन्ध आती हो! कहा जाता है कि उस बेचारीके हाथमें गीता थी। गीतामें क्या यही बात कही गई है? लेकिन उसने सोचा होगा कि हाथमें गीता रहे तो और भी अच्छा। इस अवसरपर कोई अशोभन उदाहरण देनेकी हमारी इच्छा नहीं है; नहीं तो मिट्टीके तेलसे गौरवान्वित आत्म-हत्या करनेवाली एक ऐसी स्त्रीकी भी बात कही जा सकती है, जो सती भी नहीं थी और उसने ठीक अपने स्वामीके शोकके मारे ही यह काम नहीं किया

था ।—फिर इसके सिवा समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारके और भी अनेक समाचार छपा करते हैं कि अमुक स्त्रीने अपनी सासके अत्याचारोंसे ऊबकर अथवा उचित समयपर अपना विवाह न होनेके लांछनके कारण आत्महत्या कर ली !—लेकिन इन सब बातोंको जाने दीजिए । हम लोग सती-साध्वियोंकी ही बातें करें ।

स्वामीकी मृत्यु होनेपर किसी किसी स्त्रीके मनमें आत्म-हत्या करनेकी कैसी प्रबल कामना उत्पन्न होती है, यह बात वही लोग जानते हैं जिन्होंने किसीको इस प्रकार आत्म-हत्या करते हुए देखा है । हमने एक स्त्रीको मकानकी तीसरी मंजिलकी छतसे कूदकर मरते देखा है । और एक दूसरी स्त्रीको गलेमें फाँसी लगाकर भी मरते देखा है । और विष खाकर मरना तो बहुतोंके बारेमें सुना है । लेकिन केवल इसी कारण इस प्रकारका मरना और चितापर बैठकर धीरे धीरे जलकर मरना एक बात नहीं है । पहली अवस्थामें तो झोंकमें आकर मरना होता है, लेकिन दूसरी अवस्थामें अग्निकी ज्वालासे उस झोंकका बहुत पहले ही अन्त हो जाता है । उस समय आत्म-विसर्जन हत्यामें परिणत हो जाता है । टाइलर साहब कहते हैं कि आफ्रिकाके सरदारोंकी पत्नियाँ बहुत पहले ही अपने गलेमें फाँसी लगानेके लिए रस्सियाँ चुनकर रख छोड़ती हैं । हरबर्ट स्पेन्सरने लिखा है कि फीजी द्वीपमें जब कोई सरदार मर जाता है, तब उसकी पत्नियाँ अपना गला घोंटवाकर प्राण त्याग करनेको बहुत बड़ा सत्कर्म समझती हैं; और यदि इसमें कोई बाधा देता है, तो वे इतना अधिक क्रुद्ध होती हैं कि जिसकी कोई हद नहीं । इस सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है, "The wives of Fijian chiefs consider it a sacred duty to suffer strangulation on the deaths of their husbands. A woman who had been rescued by Williams escaped during the night, and, swimming across the river and presenting herself to her own people insisted on the completion of the sacrifice which she had in a moment of weekness reluctantly consented to forego; and Wilkes tells of another who loaded her rescuer with abuse and ever afterwards manifested the most deadly hatred towards him. (अर्थात्, फीजीके सरदारोंकी पत्नियाँ अपने पतिकी मृत्युपर गला घोंटवाकर मरना एक पवित्र कर्तव्य समझती हैं । विलियम्सने एक बार एक ऐसी स्त्रीको किसी प्रकार बचा लिया था । पर वह रातको भाग निकली और

तैरकर नदीके उस पार जा पहुँची। वहाँ उसने अपने आपको अपने जातिके लोगोंके सामने उपस्थित किया और अपने सम्बन्धमें उस बलि-कर्मके पूरे करनेपर बहुत जोर दिया, जिससे वह अपने मनकी क्षणिक दुर्बलताके कारण संकोच-पूर्वक बच निकलनेके लिए राजी हो गई थी। और विल्कसने एक ऐसी स्त्रीका जिक्र किया है जिसने अपने बचानेवालेको अनेक दुर्वचन कहे थे और जो सदा अपने उस बचानेवालेके प्रति घृणा प्रकट रहती रही।)

इन सब बातोंसे क्या समझमें आता है? यही समझमें आता है कि यदि सहमरण गौरवका काम है, तो फिर आर्य जातिके सिवा और भी ऐसी अनेक नीच जातियाँ हैं जो इसी प्रकारके गौरवकी अधिकारिणी हैं। एक बात और भी समझमें आती है और वह यह कि पुरुष जो कुछ चाहते हैं और जिसके बारेमें वे यह प्रचार करते हैं कि यह धर्म है, नारियाँ उसीपर विश्वास कर लेती हैं और पुरुषोंकी इच्छाको ही अपनी इच्छा मानकर भूल करती हैं, और भूल करके सुखी होती हैं। हो सकता है कि इसीसे नारियोंका गौरव बढ़ता हो, लेकिन उस गौरवसे पुरुषोंका अ-गौरव दब नहीं सकता। प्रश्न हो सकता है कि ऐसी निष्ठुर प्रथा क्यों प्रचलित हुई? तुरन्त ही यह उत्तर जबानपर आ जाता है कि नारी पर-लोकमें पहुँचकर अपने स्वामीकी सेवा करेगी! लेकिन कितने पुरुष यह बात जानते हैं कि पर-लोक क्या है? आश्चर्य तो इस बातका है कि इतना अत्याचार, अविचार और पैशाचिक निष्ठुरता सहन करनेपर भी स्त्रियाँ सदासे पुरुषोंके साथ स्नेह करती आई हैं, उनपर श्रद्धा रखती आई हैं, उनकी भक्ति करती आई हैं और उनका विश्वास करती आई है! जिसे वह पिता कहती हैं, भाई कहती हैं, स्वामी कहती हैं, जान पड़ता है कि उसके सम्बन्धमें कभी स्वप्नमें भी उन्हें इस बातका ध्यान नहीं हुआ कि वह इतना अधिक नीच और ऐसा प्रवंचक है! मालूम होता है कि इसी जगह उसका मूल्य है।

बिल्वमंगल एक प्रसिद्ध नाटक है। बहुत दिनोंसे खुले आम रंग-मंचपर इसका अभिनय होता आया है। भारतवासी इसपर आपत्ति नहीं करते, क्योंकि इसमें धर्मकी बात है। हजारों आदमियोंके सामने खड़ा होकर वणिक लम्बी चौड़ी वक्तृता देता है और अपनी सहधर्मिणीको लम्पट अतिथिकी शय्यापर भेजता है। दर्शक-लोग धन व्यय करके यह नाटक देखते हैं और उसकी खूब तारीफ करते हैं। वणिककी वक्तृताका सारांश यही होता है कि

उसने प्रतिज्ञा की है कि उसके घरसे अतिथि विमुख होकर नहीं जायगा। उसे भय होता है कि कहीं मेरी प्रतिज्ञा भंग न हो जाय, कहीं अधर्म न हो, कहीं मृत्युके उपरान्त यमदूत मुझे डंडे न मारें। उसके मनका भाव यही होता है कि मेरे पैरमें तृणांकुर भी न चुभे, तुम्हारा जो होना हो वह हुआ करे! फिर इसके सिवा शास्त्रोंमें भी कहा गया है कि अपना सर्वस्व देकर भी अतिथिका सत्कार करना चाहिए अर्थात् धन-दौलत, हाथी-घोड़ा, गैया-गोरू जो कुछ सम्पत्ति है वह सब अतिथि-सत्कारमें लगा देनी चाहिए। लेकिन अतिथि जब ये सब चीजें नहीं चाहता, तब तुम्हीं उसके पास चली जाओ। उसने मुझसे तुम्हें माँगा है और तुम मेरी स्थावर तथा अस्थावर सम्पत्तिमें हो!—स्वामीके सामने पतिव्रता स्त्रीका सम्मान बस यही है! एक अपरिचित पापिष्ठ अतिथिकी सेवाकी तुलनामें स्त्रीका यही मूल्य है!

जो लोग विल्वमंगलके भक्त हैं, वे इसके प्रतिवादमें कहेंगे कि अतिथिके लिए हिन्दू अपने प्राण तक दे सकता है,—कर्णने अपने पुत्र तककी हत्या कर डाली थी। ये सब बातें हम भी जानते हैं। दाता कर्णने बहुत बड़ा काम किया था और उस वणिकने भी बहुत बड़ा काम किया है। लेकिन बात वह नहीं है। प्राण स्वयं आपके अपने हैं। यदि आप चाहें तो अपने प्राण दे सकते हैं। लेकिन आपकी जो यह धारणा है कि स्त्री आपकी सम्पत्ति है, आप उसके स्वामी होनेके कारण इच्छा होनेपर अथवा आवश्यकता समझनेपर उसके नारी-धर्मपर भी अत्याचार कर सकते हैं,—उसे जीती भी रख सकते और मार भी सकते हैं और उसे वितरण भी कर सकते हैं, तो यह आपका अनधिकार है। आपके इस स्वेच्छाचारने आपको भी और आपकी पुरुष-जातिको भी हीन कर दिया है और आपकी सती स्त्रीको उसके साथ ही साथ समस्त नारी-जातिको भी अपमानित कर दिया है।

अतिथि-सेवा बहुत बड़ा धर्म हो सकता है, लेकिन उसके लिए जिस प्रकार आप चोरी या डकैती नहीं कर सकते, उसी प्रकार यह काम भी नहीं कर सकते। यहूदी जिस समय पशुओंकी तरह रहा करते थे, उस समय वे अपनी सम्पत्तिके साथ साथ स्त्रियोंका भी हिस्सा-बकरा किया करते थे। अब भी बहुत-सी ऐसी असभ्य जातियाँ हैं जो घर-बार, जमीन-जायदाद और गैया-बैलोंके साथ साथ स्त्रियोंको भी भाई भाईमें बाँट दिया करती हैं। स्त्री-जातिके सम्बन्धमें वणिककी धारणा भी प्रायः इसी प्रकारकी थी और

यदि अतिथि-सत्कार इतना ही बड़ा धर्म हो कि उसके सामने सती स्त्रीका सर्वस्व नष्ट कर डालना भी धर्म-पालन गिना जाय, तो फिर इस समय भी जो लोग इस धर्मका पालन कर रहे हैं, उन्हें नीच कहना शोभा नहीं देता।

अमेरिकाकी छिनुक नामक असभ्य जातिके सम्बन्धमें कप्तान लुइसनने कहा है कि ये लोग अतिथिकी शय्यापर अपने घरकी श्रेष्ठ कन्याको और यदि कन्या न हो तो स्त्रीको भेज देना बहुत ही ऊँचे दरजेका धर्म-पालन समझते हैं। एशियाकी चुक्ची जातिके सम्बन्धमें अरमैन साहबने लिखा है, "The Chuckchee offer to travellers, who chance to visit them, their wives and also what we should call their daughters' honour. (अर्थात् जो यात्री किसी चुक्चीके यहाँ पहुँच जाते हैं, उनके सामने वह अपनी स्त्रीकी ही आबरू नहीं बल्कि जिन्हें अपनी लड़की कह सकते हैं, उनकी भी आबरू पेश कर देते हैं।)

कप्तान लायन और सर जान लबक एस्किमो जाति, कमस्कटकाके निवासियों और कालमुख लोगोंके सम्बन्धमें भी ठीक इसी प्रकारकी अतिथि-सेवाका इतिहास लिख गये हैं। हरबर्ट स्पेन्सरने अपने Descriptive Sociology (=वर्णनात्मक समाज-शास्त्र) नामक ग्रन्थमें ग्रस और पैलेस साहबके भ्रमण-वृत्तान्तसे लेकर इस प्रकारकी दयाकी बहुत-सी कहानियाँ दी हैं। हम पूछते हैं कि इन लोगोंमें और हमारे उक्त धार्मिक वणिकमें किस बातका भेद है? उन देशोंके पुरुषोंने जिसे अपना कर्तव्य और धर्म रखा समझा था उसका पालन किया था; और वणिकने भी वैसा किया था। अतिथिको संतुष्ट करनेकी इच्छा दोनोंमें ही समान है,—दोनों ही समझते हैं कि यदि अतिथि संतुष्ट न होगा तो हमें पाप लगेगा, हमें कष्ट होगा। इस बातको चाहे जिस तरहसे घुमा-फिराकर देखा जाय, इसमें सिवा उसी एक 'हम' को छोड़कर और कुछ भी मिलनेकी गुँजाइश नहीं है। और इस बातका कहीं कोई चिह्न भी नहीं दिखाई देता कि उस 'हम' में ही नारीके प्रति होनेवाला सम्मान और श्रद्धा कहाँ डूब गई है।

भगवान् शंकराचार्य बिलकुल स्पष्ट रूपसे कह गये हैं कि नारी नरकका द्वार है। बाइबिलमें नारीको root of all evil अर्थात् सारे अनर्थों या अहितोंका मूल कहा है। युरोपके प्रसिद्ध लैटिन धर्मयाजक टारटूलियनने नारीके सम्बन्धमें लिखा है, "Thou art the devil's gate, the betrayer

of the tree, the first deserter of the Divine Law." (अर्थात्, तू शैतानका दरवाजा है और तू दैवी नियम या धर्मका सबसे पहले परित्याग करनेवाली है।) जिन धर्मयाजक ऑगस्टिनने सेगटकी पदवी प्राप्त की थी वे अपनी शिष्य-मंडलीको सिखलाते थे, "What does it matter whether it be in person of mother or of sister we have to beware of Eve in every woman." (अर्थात्, स्त्री चाहे माताके रूपमें हो और चाहे बहनके रूपमें हो, लेकिन हमें सदा यह समझकर सचेत रहना चाहिए कि प्रत्येक स्त्रीमें हौवाका निवास है।)

सेगट एम्ब्रोज,—यह भी 'सेगट' ही हैं,—कह गये हैं, "Remember that God took a rid out of Adam's body and not a part his soul to make her." (अर्थात्, याद रक्खो कि ईश्वरने हौवा या स्त्रीको बनानेके लिए आदम या पुरुषके शरीरकी एक पसली ही निकाली थी, उसकी आत्माका कोई अंश नहीं निकाला था।)

सन् ५७८ ई० में जिस ईसाई धर्म-संघका आवाहन किया गया था, उसमें यह निश्चय हुआ था कि स्त्रियोंमें आत्मा नहीं होती। जिस धर्मके लिए नारी जाति जीती और मरती है और जिस धर्म ग्रन्थके प्रत्येक अक्षरके प्रति नारीकी अचल भक्ति है, उसी धर्मग्रन्थके लिखनेके समय पुरुषने नारी जातिके प्रति कैसी श्रद्धा दिखलाई है! मध्य युगके प्रसिद्ध सेगट बर्नर्डने अपनी माताको एक पत्रमें लिखा था, "What have I to do with you? What have I received from you but sin and misery? Is it not enough for you that you have brought me in this miserable world:—that you being sinners have begotten me in sin......" (अर्थात्, मेरा तुमसे क्या मतलब है? मुझे तुमसे सिवा पाप और कष्टके और क्या प्राप्त हुआ है? क्या तुम्हारे लिए इतना ही यथेष्ट नहीं है कि तुम मुझे इस कष्टपूर्ण संसारमें लाई हो? तुम लोग पापिनी हो और तुमने मुझे पापमें जन्म दिया है।)

आज युरोपके निवासी अहंकारपूर्वक कहते हैं कि हमलोग नारियोंकी जितनी dignity या मर्यादा समझते हैं, उतनी और कोई नहीं समझता। लेकिन इधर तेरह-चौदह सौ वर्षोंमें युरोपवालोंने नारियोंके प्रति जितनी असह्य घृणा दिखलाई है, उन्हें जितना क्लेश दिया है और उन्हें जितना

अवनत किया है, उतना और किसी जातिने किया है या नहीं, इसमें सन्देह है। इनके sacredotal celibacy के (=यज्ञीय ब्रह्मचर्यके) इतिहास, चर्चके इतिहास आदिके पन्ने पन्नेमे जो पुण्य-कहानी लिखी गई हैं, उसे देखते हुए हम यह नहीं जानते कि इनके मुखसे श्रद्धा और भक्तिकी जो बातें निकलती हैं, वे उपहासके अतिरिक्त और क्या हो सकती हैं।

जिस धर्मने बुनियाद ही रक्खी है आदिम जननी हौवाके पापपर, और जिस धर्मने नारीको बैठा रक्खा है संसारके समस्त अधःपतनके मूलमें, उस धर्मके सम्बन्धमें जिन लोगोके मनमें यह विश्वास है कि सच्चा धर्म यही है, उन लोगोंसे यह कभी हो ही नहीं सकता कि वे नारी जातिको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखें। ऐसे लोगोंकी श्रद्धा केवल उतनी ही हो सकती है जितनेमें कि उनका स्वार्थ लगा हुआ है। इससे अधिकको चाहे श्रद्धा कहो और चाहे उनका न्यायोचित अधिकार कहो, वह न तो पुरुषने उन्हें आजसे हजार बरस पहले दिया है और न आजके हजार बरस बाद ही देगा। मिल साहबने अपने Subjection of Woman (=स्त्रियोंकी पराधीनता) नामक पुस्तकमें इसे isolated fact या एक अलग तथ्य कहकर व्यर्थ ही दुःख प्रकट किया है।

सुनते हैं कि केवल महानिर्वाणतन्त्रके "कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयाति यत्नतः" वाले वाक्यको छोड़कर और किसी शास्त्रमें नारीको शिक्षा देनेकी आज्ञा नहीं है। स्वर्गीय अक्षयदत्त महाशयने अपने 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थके उपक्रमणिका-खंडमें इसके विरुद्ध विस्तृत आलोचना करके यह दिखलाया है कि प्राचीन कालमें स्त्रियाँ वेद तक तैयार कर गई हैं, लेकिन जब कि शास्त्रमें "त्रयी न श्रुतिगोचरा" वाला श्लोक मिल गया है, तब इन सब तर्कोंसे कुछ भी काम नहीं निकल सकता। युरोपके एक प्राचीन धर्म-याजक लिख गये हैं, "Shall the maid olympias learn philosophy? By no means. Woman's philosophy is to obey laws of marriage." (अर्थात् क्या स्त्रियोंको दर्शनशास्त्रका अध्ययन करना चाहिए?—कदापि नहीं। स्त्रीका दर्शन तो यही है कि वह विवाहके नियमोंका पालन करे।) मार्टिन लूथर सदा ही कहा करते थे, "No gown worse becomes a woman than desire to be wise." (अर्थात् बुद्धिमान् बननेकी कामना रखनेसे बढ़कर स्त्रीके लिए और कोई बुरी बात नहीं है।) चीन देशमें एक वाक्य प्रचलित है जिसका अर्थ होता है कि ज्ञान

जिस प्रकार पुरुषोंकी शोभा बढ़ाता है,—उसी प्रकार अज्ञान स्त्रियोंका सौन्दर्य बढ़ाता है,—अब इसके बाद पुरुषोंके हाथसे स्त्रियाँ और किस मंगलकी आशा कर सकती हैं ? इस प्रकारकी सब आलोचनाएँ अरण्य-रोदन ही हैं कि कब उर्वशीने वेदकी रचना की थी, पतिके प्रवासमें रहनेकी अवस्थामें किस लिए दशपौर्णमास व्रतमें स्त्रीको होम करनेका अधिकार दिया गया था और बृहदारण्यक उपनिषदमें याज्ञवल्क्य और गार्गीके संवादकी किस लिए रचना हुई थी।

आजसे छः हजार बरस पहले मिस्र आदिकी प्राचीन सभ्यताओंके समय नारियोंके अधिकारके सम्बन्धमें मासपेरोने इस प्रकारकी बहुत-सी बातें कही हैं कि, Husdand is a privileged guest." " She inherited equally with her brother " " Inistress of the house. " " Judicially equal of man."" Having the same rights and being treated in the same fashion. " (अर्थात "पत्नीके सामने पतिकी हैसियत एक सम्मानित अतिथिकी-सी होती थी।" "स्त्रीको भी अपने भाइयोंके समान ही पिताकी सम्पत्तिका अंश मिलता था।" "वह घरकी स्वामिनी होती थी।" "कानूनकी दृष्टिमें उसे पुरुषके समान अधिकार होता था।" "उसे पुरुषोंके समान ही अधिकार होते थे और उसके साथ भी पुरुषोंके समान व्यवहार होता था।") आदि आदि। रोमको इसी सभ्यताका प्रकाश मिला था और इसीलिए उस समय रोमकी स्त्रियाँ भी यथेष्ट उन्नत हो गई थीं। मेम साहबने अपने Ancient Law (=प्राचीन कानून) नामक ग्रन्थमें इस बातकी यथेष्ट आलोचना की है कि यह Pagan Law (=काफिरोंका नियम) परवर्ती कालके सुसभ्य आईन-कानूनमें कहाँ और क्यों डूब गया है।

हम सभी शिक्षिता स्त्रियोंसे अनुरोध करते हैं कि वे सर हेनरीका यह अध्याय पढ़ जायँ।

युरोपके आईन-कानूनोंमें प्राचीन रोमका यथेष्ट प्रभाव दिखाई देनेपर भी नारियोंके सम्बन्धमें यहूदियोंकी कड़ी व्यवस्थाको ही अधिक स्थान मिला है। क्योंकि वह कड़ी व्यवस्था पुरुषोंको अधिक अच्छी लगी है और वही उनके मनसे मिली है। पहले तो अवश्य ऐसा मालूम होता है कि धर्मके नैकट्यका हेतु यही तो स्वाभाविक है, लेकिन अगर कुछ गहरे पैठकर देखा जाय तो पता चलता है कि स्वाभाविक तो जरूर है, लेकिन वह केवल

धर्मकी घनिष्ठताके कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि वह पुरुषोंके मनके अनुसार है। धर्मका दबाव तो अवश्य है ही।

ईसा मसीह बहुत-सी बातें कह गये हैं, लेकिन स्त्री-जातिके ऊपर अत्याचार करनेके सम्बन्धमें उन्होंने स्पष्ट रूपसे कहीं एक बात भी नहीं कही है। पर जगद्-विख्यात सेण्ट पॉल यह सिखला गये हैं कि धर्मके सम्बन्धमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियाँ कोई प्रश्न नहीं कर सकेंगी, वे सदा अपने स्वामीके अधीन रहेंगी। जिस कारणसे ईश्वरने पुरुषोंके लिए नारियोंका सृजन किया है, उस कारणसे उसने नारियोंके लिए पुरुषोंका सृजन नहीं किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि नारी कभी पुरुषको शिक्षा नहीं दे सकेगी। नारीने ही संसारमें पापका प्रवेश कराया है, इसलिए नारियाँ अनन्त नरकमें डूबेंगी और उनकी सद्गतिका कोई उपाय नहीं है। लेकिन हाँ, अगर वे अपने गर्भमें सन्तान धारण कर सकें तो उनकी सद्गति हो सकती है। ईश्वरको जाननेवाले पॉल महाशयका यह कथन कितना सुन्दर है! नारियोंकी मुक्तिका कैसा सीधा रास्ता है! और आप युरोपका जो चाहें वह धर्म-ग्रन्थ उठा लें, आपको सबमें इसी पथका परिचय मिलेगा। हम लोगोंके शास्त्रोंमें भी केवल सन्तानके कारण ही नारियाँ 'महाभागा' कही गई हैं और पुत्रके लिए ही भार्या-ग्रहणकी व्यवस्था की गई है। और संसारके चाहे जिस देशके इतिहास और धर्म-ग्रन्थोंकी आलोचना करके देखा जाय, सबमें कुछ न कुछ इसी प्रकारकी व्यवस्था दिखाई देगी।

नारियोंका सम्मान स्वयं उनके कारण नहीं होता, बल्कि वह उनकी सन्तान और पुत्र-प्रसव करने पर निर्भर करता है। यदि पुरुषकी दृष्टिमें नारीके जीवनका एक-मात्र यही उद्देश्य हो, तो यह किसी प्रकार उसके गौरवका विषय नहीं हो सकता। लेकिन वास्तवमें बात ऐसी ही है। सन्तान-प्रसवको छोड़कर संसार नारियोंसे और कोई आशा नहीं करता; और वह स्त्रियोंका जो कुछ सम्मान करता आ रहा है, वह केवल इसीलिए कि स्त्रियाँ सन्तान प्रसव करती हैं। हमारे शास्त्रोंमें 'क्षेत्रज' सन्तान उत्पन्न करनेकी भी विधि है। कुन्तीको पाँच पांडव और अम्बालिकाको पांडु-धृतराष्ट्र उत्पन्न करने पड़े थे। परन्तु सती नारियोंके लिए यह कोई श्लाघाकी बात नहीं है। प्राचीन यहूदी समाजमें भी अपुत्रक विधवा भौजाईको सन्तान उत्पन्न करनेके लिए देवरकी उप-पत्नी बनकर रहना पड़ता था। नारियोंके लिए जो शास्त्रीय विधियाँ

' डूटरनमी ' नामक धर्म-पुस्तकके पचीसवें अध्यायके अन्तमें दी गई हैं, उन्हें पढ़नेसे मनमें घृणा उत्पन्न होती है। उसे देखनेसे मालूम होता है कि यहूदी लोग सन्तान उत्पन्न करनेकी कामनासे नारियोंके साथ क्या नहीं करते थे। इसी प्रचार आफ्रिकामें भी नारियोंको विवश होकर अनेक असाध्य साधन करने पड़ते थे। हरबर्ट स्पेन्सरने लिखा है, " Dahoman, *like all other semi-barbarians,* Consideis a numerous family the highest blessing " (अर्थात्, दूसरे समस्त अर्द्ध-बर्बर लोगोंकी तरह दहीमन भी समझता है कि परिवारमें बहुतसे लोगोंका होना ईश्वरकी सबसे बड़ी देन और अनुग्रह है।) उन्होंने यह भी कहा है कि आफ्रिकाके पूर्वीय भागमें, " It is no disgrace for an unmarried woman to become the mother of numerous famliy Woman's irregularities are easily forgiven if she bears many children." (अर्थात्, अविवाहिता स्त्रीके लिए बहुतसे बच्चोंकी माँ हो जाना कोई कलंककी बात नहीं है। यदि कोई स्त्री बहुतसे बच्चे उत्पन्न करे तो उसके और सब दोष सहजमें भुला दिये जाते हैं।) ओटियाक्स लोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है कि उनमें It is honourable foi a virgin girl to have children. She then gets a wealthier husband and her father is paid a higher halym for her. (अर्थात्, किसी कुमारी लड़कीके बाल-बच्चे होना सम्मानजनक माना जाता है और उस अवस्थामें उसे अधिक सम्पन्न पति मिलता है और उसके पिताको भी उसके बदलेमें अधिक धन मिलता है।) बाइबिलकी तरह प्राचीन धर्मपुस्तक Old Testament में भी यही कहा गया है कि स्त्रीके सन्तान न होना महापाप है।

हम यह बात समझानेके लिए कि नारियोंका मूल्य किस प्रकार निश्चित किया जाता है, इस प्रकारकी और नजीरें देकर इस पुस्तकको नहीं बढ़ाना चाहते। आवश्यकता होनेपर इस बातकी सत्यता और भी हजारों तरहसे प्रमाणित की जा सकती है कि पुरुषके इस स्वार्थके लिए ही नारीका इतना मान है और इसीलिए उसकी इतनी मर्यादा है। लेकिन यहाँ हमें ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर भी इस संबंधमें कुछ और बातें बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि स्वार्थके लिए ही पुरुष सदासे स्त्रियोंका निर्यातन और अपमान करता आ रहा है और इसका कारण

यही है कि पुरुषोंके यह बात समझनेपर भी स्त्रियाँ इसे नहीं समझती रहीं हैं; और ऐसा मालूम होता है कि शायद वे समझना भी नहीं चाहतीं। संसारकी छोटी-मोटी सुख-शान्तिमें रहकर और पतिके मुखकी ओर देखकर वह किस तरह यह बात सोच सकती है कि यह पति अन्तःकरणसे मेरे मङ्गलकी कामना नहीं करता ? अपने पिताके पास खड़ी होकर वह किस तरह सोच सकती है कि यह पिता मेरा मित्र नहीं है ? वास्तवमें यदि एक एक बातको अलग लेकर देखा जाय तो इस सत्यको हृदयंगम करना असाध्य ही है: लेकिन यदि समग्र भावसे समस्त नारी जातिके सुख-दुःख और मङ्गल-अमङ्गलकी तहमें देखा जाय तो पिता, भाई और पतिकी सारी हीनताएँ और सारी धोखेबाजियाँ क्षण-भरमें ही सूर्यके प्रकाशके समान आपसे आप सामने आ जाती हैं।

यह बात हम जरा और समझाकर कहेंगे। जब देशमें कोई विशेष नियम प्रतिष्ठित होता है, तब वह एक ही दिनमें नहीं, बल्कि बहुत धीरे धीरे सम्पन्न हुआ करता है। जो लोग उसे सम्पन्न करते हैं, वे पुरुषोंके अधिकारकी सहायता करते हैं। उस समय वे लोग पिता नहीं होते, भाई नहीं होते, पति नहीं होते: होते हैं केवल पुरुष। जिन लोगोंके सम्बन्धमें वे नियम बनाये जाते हैं, वे भी आत्मीया नहीं होतीं, बल्कि होती हैं केवल नारियाँ। पुरुष उस समय पिता बनकर कन्याके दुःखका विचार नहीं करता। वह उस समय केवल पुरुष रहकर पुरुषोंके स्वार्थका ही विचार करता है। वह केवल इसी प्रकारके उपायोंकी उद्भावना करता रहता है कि स्त्रियोंसे किस प्रकार और कितना अधिक वसूल किया जा सकता है। इसके बाद मनु आते हैं, पराशर आते हैं, मूसा आते हैं, पॉल आते हैं और वे लोग श्लोकपर श्लोक बनाते जाते और शास्त्रोंकी रचना करते जाते हैं। स्वार्थ उस समय धर्म बनकर मजबूत हाथोंसे समाजका शासन करनेका अधिकार प्राप्त करता है। देशका पुरुष-समाज व्यासदेव होता है और शास्त्रकार केवल उस समाजके बनाये हुए नियमोंके लिखनेवाले गणेशजी। सभी देशोंके शास्त्र बहुत कुछ इसी प्रकार प्रस्तुत हुए हैं।

इसके बाद शास्त्रोंको मानकर चलने और उसके अनुसार काम करनेके दिन आते हैं। धर्मके आसनपर उनके जमकर बैठ जानेमें अधिक विलम्ब नहीं लगता; और उस धर्म-पालनके सामने व्यक्तिगत सुख-दुःख, स्नेह-ममता

और भलाई-बुराई सभी बातें उसी प्रकार डूब जाती हैं, जिस प्रकार पानीकी बाढ़के सामने फूल और तिनके डूब जाते हैं। अपने देशकी सहमरणकी प्रथामें हमें यह बात दिखाई देती है और दूसरे देशोंकी अधिकतर निष्ठुर प्रथाओंमें भी यही बात सामने आती है। यहूदी लोग अपने देवताके सामने अपने पुत्रों और कन्याओंका बलिदान देनेमें कुण्ठित नहीं होते थे। उन लोगोंकी धर्म-पुस्तकके एक एक पृष्ठमें सन्तान-हत्याके जो परम निष्ठुर इतिहास लिखे हुए हैं, उनकी गिनती नहीं हो सकती। उन लोगोंके 'मलेक' देवता तो केवल इसीलिए अमर हो गये हैं। मेक्सिकोमें रहनेवाले माता-पिता अपने एक विशिष्ट देवताके सामने अपनी श्रेष्ठ कन्याकी हत्या करके पुण्य अर्जित करनेमें तनिक भी दुबिधा नहीं करते थे। अनेक देशोंमें बहुत-से ऐसे राजा दिखाई देते हैं जो धर्मके नामपर दाता कर्णकी तरह पुत्र-हत्या करते थे। मेवाड़के राजाने अपने पुत्रको बलि चढ़ाया था और कारथेजके राजाने देवताके सामने अपनी कन्याका वध किया था। हम समझते हैं कि प्राचीन कालमें ऐसा एक भी देश नहीं बच गया था जिसमें धर्मके नामपर सन्तान-हत्या न हुई हो। तो क्या यह समझा जाय कि उस जमानेमें माता-पिता अपनी सन्तानसे प्रेम नहीं करते थे? प्रेम तो अवश्य ही करते थे, परन्तु उस समय उनमें स्नेह और ममता रह ही नहीं सकती थी। प्रथा जब एक बार धर्मका रूप धारण करके खड़ी हो जाती है, जब उससे देवता प्रसन्न होने लगते हैं और परलोकका काम सँवरता है, तब फिर कोई भी निष्ठुरता असाध्य नहीं रह जाती। बल्कि कार्य जितना ही अधिक निष्ठुर होता है और जितना ही अधिक बीभत्स होता है, पुण्यका वजन भी उतना ही बढ़ जाता है। उस समय माता-पिता केवल सन्तानका विचार करके मुँह नहीं फेर सकते।

हो सकता है कि किसी किसी क्षेत्रमें माया-ममता आकर बाधा देने लगती हो, लेकिन उस समय उस निष्ठुर कार्यसे बचानेका कोई उपाय नहीं रह जाता। अपने स्वार्थके लिए पुरुष साधारण भावसे एक बार जिस प्रथाको धर्मके अनुशासनके रूपमें प्रतिष्ठित कर लेता है, पिता होकर अपनी सन्तानके लिए अतिक्रमण नहीं कर सकता।

जिस समय पचास वर्षके बुड्ढेके साथ किसी पुरुषको अपनी बालिका कन्याका विवाह करना पड़ता है, उस समय सम्भव है कि थोड़ी देरके लिए उसके कलेजेमें चोट लगती हो, लेकिन कोई उपाय भी उसे ढूँढ़े नहीं मिलता।

उसे अपनी जात बचानी पड़ती है और धर्मकी रक्षा करनी पड़ती है। वह जो प्रथा पुरुष होकर, समाजका एक व्यक्ति या अंग होकर प्रचलित करता है, इस समय वही प्रथा एक हाथसे तो उसके आँसू पोंछवाती है और दूसरे हाथसे उसे बलिदान करनेके लिए बाध्य करती है। स्नेहमें इतना अधिक बल नहीं होता कि उसे उस निर्दयतापूर्ण कार्यसे विरत कर सके। इसीलिए देखा जाता है कि स्नेह, माया और दया होनेपर भी लोग अमङ्गल कर सकते हैं और परम आत्मीय होनेपर भी परम शत्रुके समान ही क्लेश दे सकते हैं।

पर हम उस स्वार्थकी बातपर ध्यान न दे सकेंगे, क्योंकि हम जानते हैं कि इस समय वह धर्मकी दोहाई देकर ही अपने आपको शान्त करेगा। लेकिन अगर वह गहराईमें डूबकर यह देखना चाहे कि इस प्रथाका सुदूर मूल कहाँ निहित है, तो वहाँ उसे अखण्ड स्वार्थपरताके अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न देगा। लेकिन यह देखना बहुत ही कठिन होता है। पिताके पक्षमें भी कठिन होता है और कन्याके पक्षमें भी कठिन होता है। जिस समय प्रतिष्ठित किये हुए नियमके पालनमें मनुष्य एकान्त मग्न रहता है, उस समय उसके नेत्रोंकी दृष्टि भी रुद्ध हो जाती है। उस समय वह किसी तरह यह नहीं देख सकता है कि धर्म कौन-सा है और अधर्म कौन-सा है। वैदिक यज्ञोंकी अगणित पशु-हत्यामें जो अन्याय था वह कहाँ था, इसका पता मनुष्यको केवल उसी समय लगा जिस समय बुद्धदेव उसे उस हत्यासे अलग करके दूर ले जा चुके थे। सहमरण आज बन्द हो गया है, इसलिए अब हम उसका स्मरण करते ही सिहिर उठते हैं। आज जब हम यह देखते हैं कि गंगा-सागरमें सन्तानको फेंकनेमें कितना अधिक पाप छिपा हुआ था, तब अँग्रेजोंके कानूनको सर्वान्तःकरणसे आशीर्वाद देते हैं। पर उस समय हम लोगोंने उस कानूनके विरुद्ध कितनी लड़ाइयाँ नहीं ठानी थीं! यहाँ तक कि अपनी गाँठके धनका अपव्यय करके विलायत तक उसकी अपील की थी! जो लोग अपील करनेमें प्रधान रूपसे उद्योग करते थे; उन्हें तो हम लोग अपना परम मित्र मानते थे; और स्वर्गीय राजा राममोहनरायको धर्मद्वेषी राक्षस कहकर न जाने कितनी गालियाँ दिया करते थे!

आज ऐसा मालूम होता कि हमें अपने उस भ्रमका पता चल गया है; लेकिन फिर भी अभी तक हमें चैतन्य नहीं हुआ है। आज भी हम सामाजिक प्रश्नोंकी मीमांसा करानेके लिए दौड़े हुए पुराने पण्डितोंके ही पास

पहुँचते हैं। उन्हींसे जाकर हम पूछते हैं कि कौन-सी बात अच्छी है और कौन-सी बुरी है, क्योंकि वे लोग शास्त्रोंके ज्ञाता हैं ! लेकिन इस बातका हम एक बार भी विचार नहीं करते कि पंडित केवल शास्त्रोंके श्लोक ही जानते हैं, इसके सिवा और कुछ भी नहीं जानते। हम लोग कभी इस बातका विचार नहीं करते कि यदि विद्याका चरम उद्देश्य हृदयको प्रशस्त करना है, तो फिर उन पंडितोंमेंसे अधिकांशका पढ़ना-लिखना बिल्कुल ही व्यर्थ हुआ है। जब उनसे यह पूछा जाता है कितने वर्षोंकी अवस्थामें कन्याका विवाह करना उचित है, तब वे शास्त्र उलटने पुलटने लगते हैं; और जब हम उनसे यह जानना चाहते हैं कि विधवा-विवाह उचित है या नहीं, तब भी वे अपनी पोथी खोलकर बैठ जाते हैं। वे मिलान करके यह देखना चाहते हैं कि इस विषयमें श्लोक क्या कहते हैं। शास्त्रोंने उन लोगोंकी दृष्टि क्षीण कर रखी है। शास्त्रोंके बाहर वे लोग देख नहीं पाते हैं और शास्त्रोंके बाहर अपने पैर भी नहीं बढ़ा सकते। वे लोग कण्ठस्थ करनेकी शक्तिको ही बुद्धि समझते हैं और कण्ठस्थ करनेको ही ज्ञान कहते हैं।

यहाँ हम इस बातका एक दृष्टान्त देते हैं कि किस तरह उन लोगोंका ज्ञान अधिकांश अवस्थामें अनुस्वार और विसर्ग तकका भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। स्वर्गीय महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालंकार महाशय 'श्रीगोपाल मल्लिक फेलोशिप'के अपने दूसरे व्याख्यानमें नामकरण-प्रणालीके सम्बन्धमें कहते हैं, "कुछ लोग कहते हैं कि मेरु-तन्त्रमें लन्दन नगरका उल्लेख है, इसलिए वह नितान्त आधुनिक है। लेकिन उन लोगोंको इस बातकी विवेचना करना उचित है कि पुराणों आदिमें अनेक भविष्यदुक्तियाँ भी हैं। मेरु-तन्त्रमें भी भविष्यदुक्तिवाले स्थानपर लन्दन नगरका उल्लेख हुआ है। इसलिए उस उल्लेखके द्वारा मेरुतन्त्रकी आधुनिकता प्रतिपन्न नहीं हो सकती।" मेरुतन्त्रमेंसे कुछ अंश उन्होंने यहाँ दिखलानेके लिए उद्धृत किया है कि लन्दनका उल्लेख भविष्यदुक्ति है। यथा—

पूर्वाम्नाये नवशतं षडशीतः प्रकीर्त्तिता।
फिरिंगि-भाषया मन्त्रा येषां संसाधनात् कलौ।
अधिपा मण्डलानां च संग्रामेष्वपराजितः।
इंरेजा नवषट् पञ्च लण्ड्रजाश्चापि भाविनः।

उधर स्वर्गीय अक्षयदत्त महाशयने नकली शास्त्रकारोंकी जूआचोरी

प्रमाणित करनेके लिए मेरुतन्त्रका वही श्लोक अपने 'भारतवर्षीय उपासक सम्प्रदाय' नामक ग्रन्थकी उपक्रमणिकामें उद्धृत किया है। इन दोनोंका ही पांडित्य बहुत गम्भीर था। लेकिन इनमेंसे एक महाशय जिस श्लोकके अस्तित्वसे श्लाघाका अनुभव करते हैं; दूसरे महाशय उसी श्लोकका घृणापूर्वक वर्जन करते हैं! यहाँ जिस प्रकार यह समझनेमें विलम्ब नहीं होता कि इनमेंसे किसका विचार समीचीन है, उसी प्रकार स्वर्गीय महामहोपाध्याय महाशयके समान देश-प्रसिद्ध पंडित-चूड़ामणि महाशयके मुखसे इस प्रकारकी बात सुनकर और संस्कृत श्लोकोंपर उनका इतना अधिक अन्ध विश्वास देखकर किसी आशा या भरोसेकी जगह भी बाकी नहीं रह जाती। फिर पंडित महाशयने स्वयं ही यह कहा है कि मेरुतन्त्रकी प्रामाणिकताके सम्बंधमें सन्देह करनेका एक और कारण है और वह कारण यह है कि फारसी भाषामें और फिरंगी भाषामे जिन मन्त्रोंके होनेकी बात कही गई है, उन उन भाषाओंके ज्ञाता जानते हैं कि वस्तुतः उन मंत्रोंका कोई अस्तित्व ही नहीं है। यहाँ बहुत कुछ अनिच्छा होनेपर भी उनके मनमें कुछ खटका पैदा हुआ है। लेकिन खटकेकी कोई ऐसी बात नही है। पुराणों आदिमें जब योगके बलसे हाथ देखकर भविष्यतकी बातें कही गई हैं, तब यदि मेरुतन्त्रके ग्रन्थकारने भी उसी प्रकार हाथ देखकर लन्दन नगरके और कलिकालके मंत्र-सिद्ध अँगरेजोंके पराक्रमका उल्लेख कर दिया हो, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? इसी लिए उन्होंने पहलेसे ही सन्देह करनेवालोंको सतर्क करके पुराणो आदिकी भविष्यद्वाणियोंका भी उल्लेख कर दिया है। धन्य है यह विश्वास! और धन्य है यह युक्ति!

हम यह जानते हैं कि हमारी ये बातें बहुतोंको अच्छी नहीं लग रही हैं और इसके विरुद्ध तर्क करनेकी इच्छा होनेपर अनेक प्रकारके तर्क भी किये जा सकते हैं। लेकिन यह तर्ककी बात नहीं है और विवाद या विसंवादकी चीज नहीं है। यह सोचने-समझनेका विषय है और काम करनेकी सामग्री है। हम यह जानते हैं कि जो लोग स्वदेश और विदेशोंके शास्त्रोंका इतिहास जानते हैं और जिन्होंने समस्त जातियोंके आचार-व्यवहार आदिके सम्बन्धमें हमसे कही अधिक अध्ययन किया है, वे यदि तर्क करना चाहें तो हमें परास्त कर सकते हैं; लेकिन फिर भी हम यह बात निर्भय होकर कह सकते हैं कि हमने जो सत्य अपने हृदयकी व्यथामेंसे निकालकर सब लोगोंके सामने रक्खा है, उस सत्यको कोई महामहोपाध्याय उड़ा देनेकी शक्ति नहीं रखता।

चाहे हमारी हार हो और चाहे जीत हो, परन्तु वास्तविक बात यह है कि अब वह समय आ गया है कि इस विषयपर खूब अच्छी तरह और निश्चयपूर्वक विचार किया जाय कि वास्तविक सामाजिक प्रश्नोंकी मीमांसाका भार समाजके किन लोगोंके हाथोंमें रहना उचित है। जो लोग इतने दिनोंतक जबरदस्ती करते आ रहे हैं, वे लोग भी करें, अर्थात् दुर्गा-पूजाके समय महा अष्टमी दो घड़ी आगे हो या पीछे हो, बिल्ली मारनेका प्रायश्चित्त एक गगडा रुपये हों या पाँच गगडे रुपये हों, महन्तजी महाराजा वेश्या रखनेसे स्वर्ग जायँगे या विवाह करनेसे पतित होंगे,—आदि प्रश्नोंकी मीमांसा वही लोग करें: इसमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है। परन्तु समाजकी भलाई या बुराई किस बातमें है और किस बातमें नहीं है, किस नियमको प्रचलित करनेसे अथवा किस नियममें परिवर्तन करनेसे आधुनिक समाजका कल्याण या अकल्याण होगा, स्वदेशके हितके लिए विलायत जानेमें जाति जायगी या नहीं,—आदि दुरूह विषयोंमें उनका हाथ डालना अनधिकार-चर्चा ही है।

इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा करनेका अधिकार देशके केवल उन्हीं लोगोंको प्राप्त है, शिक्षा जिनके हृदयोंको प्रशस्त करके सार्थक हुई है। इसका अधिकार स्वर्गीय विद्यासागर महोदय सरीखे ऐसे ही लोगोंको है जिन्हें समाजका भला-बुरा निश्चित करनेके लिए भगवानने स्वयं अपने हाथोंसे गढ़कर इस लोकमें भेजा था। इन सब सामाजिक प्रश्नोंकी मीमांसाका भार भी उन्हीं सब बड़े लोगोंके ऊपर है, जिन्हें देशके लोगोंने बड़ा मान लिया है। ब्राह्मण पंडितोंके ऊपर इसका भार नहीं है।

ये ब्राह्मण पंडित किस प्रकार जान सकेंगे कि शास्त्र क्यों शास्त्र हैं, या कौन-से शास्त्र सच्चे और कौन-से प्रतारणा-मात्र हैं? ये पण्डित लोग किस तरह ये बात समझेंगे कि उस जमानेमें समाजमें कौन-से गुण और दोष विद्यमान थे और इस समय कौनसे दोष तथा गुण हैं? इन सब बातोंकी आलोचना पंडितोंकी किस पाठशालामें हो सकती है? किन स्मृति-रत्नोंमें इस प्रकारकी आलोचना करनेका धैर्य अथवा साहस है? एक अपने द लोगोंको छोड़कर इनके लिए बाकी सभी लोग म्लेच्छ हैं और सभी लोग अशुचि हैं। ये केवल अपनी तरहके लोगोंको छोड़कर बाकी सभी लोगोंको अशास्त्रीय समझते हैं। ये अपने आचार-व्यवहारको छोड़कर संसारके और सभी आचार-व्यवहारोंको कदर्य तथा हीन समझते हैं। तात्पर्य यह कि एक

अपने आपको छोड़कर ये और किसीको मनुष्य ही नहीं समझते। ये लोग इस सत्यको किसी तरह मानते ही नहीं कि कालके साथ ही साथ नियम भी बदला करते हैं। इसीलिए ज्यों ही किसी समयोपयोगी नवीन पथका अवलम्बन करनेकी चेष्टा होती है, त्यों ही ये लोग मारे भयके सूख जाते हैं। रो-रोकर ये लोग यह जतलाने लगते हैं कि शास्त्रोंमें तो इस सम्बन्धमें श्लोक ढूँढ़े ही नहीं मिलते और तब जी-जानसे उस काममें बाधा खड़ी करके यह समझ लेते हैं कि देशका उपकार हो रहा है,—शास्त्रोंकी रक्षा हो रही है।

और फिर एक प्रश्न यह भी है कि क्या स्वयं ये लोग भी शास्त्रोंके अनुसार चलते हैं? शास्त्रोंमें राक्षस-विवाह है। शास्त्रोंमें आसुर-विवाह है। शास्त्रोंमें क्षेत्रज सन्तान उत्पन्न करनेकी भी विधि है। यदि आधुनिक समाजमें ये सब बातें शुरू हो जायँ तो क्या इन लोगोंको अच्छा मालूम होगा? और फिर यदि इनसे यह पूछा जाय कि आखिर आप इन सब बातोंको क्यों अच्छा नहीं समझते, तो उसका भी ये कोई ठीक ठीक उत्तर नहीं दे सकते। उस समय ये लोग घुमा-फिराकर और बहुत-सी इधर-उधरकी बाते करके यह बतलानेकी चेष्टा करते हैं कि यह देशाचार नहीं है, उतना आवश्यक भी नहीं है, अच्छा नहीं है, मनुष्यकी नैतिक बुद्धि इन बातोंका अनुमोदन नहीं करती, आदि आदि। अर्थात यदि ये बातें शास्त्रोंमें हों, तो हुआ करें: और फिर एक शास्त्रमें इससे उलटे श्लोक हैं! इस तरह हम स्वयं तो अपने घरमें गान्धर्व विवाह और क्षेत्रज सन्तान आदि होना किसी तरह पसन्द नहीं करेंगे, और यदि और कोई ये काम करेगा तो हमसे जितनी गालियाँ हो सकेंगी, हम उसे उतनी गालियाँ देंगे!

असल बात यह है कि, "हम पसन्द नहीं करते।" वास्तवमें यदि कोई शास्त्र पुरुषोंके आन्तरिक अभिप्रायोंके साथ मेल न खाता हो, तो फिर पुरुष उसे अधिक दिनों तक नहीं मानते। जो शास्त्र उनके अभिप्रायोंसे मेल खा जाता है वह तो तुरन्त ही टकसाली हो जाता है, और नहीं तो अगर स्वयं भगवान् भी उतर आवें और बीच सड़कमें खड़े होकर और स्वयं अपने मुँहसे चिल्लाकर कहें, तो भी उसे कोई नहीं मानता। हो सकता है कि किसी विशेष अवस्थामें वह शास्त्र किसीको दुःखी भी करे: लेकिन, साधारण इच्छाके दबावके कारण वह दुःख स्थायी तो होने ही नहीं पाता, उलटे उत्कृष्टतर धर्मका रूप धारण करके और परलोकमें सौगुना सुख मिलनेका आश्वासन देकर मनुष्यको

परितृप्त कर देता है। पुरुषोंका क्षणिक दुःख तो क्षण-भरमें ही जाता रहता है, लेकिन जिसे सदा दुःख सहना पड़ता है वह है नारी।

हम अपने देशमें 'पूजार्हा' (पूजनीया) नारियोंकी पूजाकी व्यवस्था देख चुके हैं। उस 'पूजा' को आदर्श मानकर जो पुरुष श्लाघाका अनुभव करते हैं, उनसे हमें कुछ भी नहीं कहना है। हम विदेशोंकी व्यवस्था भी देख चुके हैं, वहाँ भी यही हाल है। चार-पाँच हजार बरसके पहले किसी लुप्त आईन-कानूनकी एक धारामें उस समयकी सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार लिखी है, "If a wife hates her husband and says, 'Thou art not my husband' into the river they shall throw her." (अर्थात्, यदि कोई पत्नी अपने पतिसे घृणा करती है और उससे कहती है कि तुम मेरे पति नहीं हो, तो लोगोंको चाहिए कि उस पत्नीको नदीमें फेंक दें।) और एक दूसरी धारामें लिखा है, "If a husband says to his wife. 'Thou art not my wife' half a mina of silver he shall weigh out to her and let her go.' (अर्थात्, यदि कोई पति अपनी पत्नीसे कहता है कि तुम मेरी पत्नी नहीं हो, तो वह तौलमें आध मीना चाँदी दे दे और उसे घरसे निकाल दे।)

कैसा सूक्ष्म न्याय है! अवश्य ही हम यह तो नहीं कह सकते कि आध मीना चाँदी कितनी होती है, पर वह चाहे कितनी ही क्यों न हो, इतना हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि जलमें डुबाकर मारनेके मुकाबलेमें वह एक पलड़ेपर रखकर नहीं तौली जा सकती! प्राचीन बेबिलोनके कानूनमें १३७ से १४३ धारा तक ठीक इसी तरहकी व्यवस्थाएँ दी गई हैं और बैबिलोन यहूदियोंकी अपेक्षा हजारों गुना श्रेष्ठ था। थोड़े ही दिन पहले युरोपकी नारियोंके सम्बन्धमें अनेक लोगोंने लिखा था, "She was sold into slavery to her husband by her father and was treated with a different legal code from her brother." (अर्थात्, वह पिताके द्वारा पतिके हाथ गुलामी करनेके लिए बेच दी जाती थी और उसके साथ जिन कानूनी धाराओंके अनुसार व्यवहार होता था, वे धाराएँ उन धाराओंसे भिन्न होती थीं, जिनके अनुसार उसके भाईके साथ व्यवहार होता था।)

और कुछ लोगोंने लिखा है, "Wife of a labourer a chattel of the state, her life an unceasing drudgery." (अर्थात्, मजदूरकी औरत

जमींदारकी सम्पत्तिके समान होती थी और उसे ऐसा कठोर परिश्रम करना पड़ता था जिसका कोई अन्त नहीं होता था।)

हाँ, हम यह स्वीकार करते हैं कि कहीं तो बाहरी चमक-दमक है और कहीं अन्दरसे संशोधनकी चेष्टा हो रही है, लेकिन उस संशोधनका भार अपने ऊपर लिया है नारियोंने ही। पुरुष कभी उपयाचक होकर उनकी भलाई करनेके लिए न तो आया ही है और न कभी आयेगा ही। पुरुषोंमें जो लोग बहुत अच्छे हैं, वे दया करके नारियोंकी दुर्दशाके सम्बन्धमें पुस्तकें लिख गये हैं जैसे मिल और कनडोरसेट। प्राचीन कालमें प्लेटो भी अपनी रिपब्लिक नामक पुस्तकमें लिख गये हैं, "This sex which we keep in obscurity and domestic work--is it not fitted for nobler and more elevated functions? Are there no instances of courage, wisdom, advances in all the arts? May hap these qualities have a certain debility, and are lower than in ourselves, but does it follow that they are, therefore, useless to the country?" (अर्थात्, जिन स्त्रियोंको हम अन्धकारमें और घरके काम-धन्धोंमें लगाये रहते हैं, क्या वे अधिक उत्तम और अधिक उच्च कार्योंके लिए उपयुक्त नहीं हैं? क्या स्त्रियोंमें साहस, बुद्धिमत्ता और सब कलाओंमें प्रवीण होनेके उदाहरण नहीं मिलते? कदाचित् उनके इन गुणोंमें कुछ दुर्बलता है और वे गुण हमारे गुणोंकी अपेक्षा कुछ नीचे दर्जेके हैं, लेकिन क्या इसीलिए इसका यह मतलब होना चाहिए कि वे देशके लिए निरर्थक हैं?) हम इस लेखका सूक्ष्म विचार नहीं करना चाहते और इस may hap या कदाचित्वाली बातकी भी व्याख्या नहीं करना चाहते; तो भी यदि हम यह कहें कि इन लोगोंमें कोई सद् अभिसन्धि बिलकुल थी ही नहीं, तो हमारा यह कहना अन्यायपूर्ण होगा। फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि इन लोगोंकी इन सब बातोंका कोई फल नहीं हुआ था, और हम समझते हैं कि इसका कारण यही था कि इसके भीतर कोई वास्तविक प्रयास नहीं था।

हम यह नहीं जानते कि सिवा पुस्तकोंमें लिखनेसे पुरुषोंने नारियोंको कहीं यथार्थ सम्मान देनेकी भी चेष्टा की है। लेकिन इतना हम अवश्य जानते हैं कि यदि कभी किसी देशमें स्त्रियोंने यथार्थ श्रद्धा और सम्मान प्राप्त किया है, तो वह केवल अपनी चेष्टासे ही प्राप्त किया है। प्राचीन मिस्रमें एक बार

यह चेष्टा हुई थी और उसी चेष्टाके स्रोतने रोम तक पहुँचकर आघात किया था। हमारे देशमें भी एक बार इस प्रकारकी चेष्टा हुई थी और वह उस समय हुई थी जिस समय स्त्रियाँ वेदकी रचना करनेकी स्पर्धा रखती थीं। लेकिन अब तो वेदोंको स्पर्श तक करनेका उन्हें अधिकार नहीं है। [नारियोंका वास्तविक मूल्य तो उस समय था जिस समय नारियाँ पुरुषोंके मुखसे 'देवी' सम्बोधन सुनकर ही गद्गद नहीं हो जाती थीं, बल्कि वह पुरुषोंको मुँहसे कही हुई बात कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिए विवश करती थीं।]

अब हम आज-कलके जमानेका एक दृष्टान्त देते हैं। इस देशमें एक बार जब विधवा-विवाहके पक्ष और विपक्षमें घोर आन्दोलन चला था, तब जो लोग विधवा-विवाहके पक्षमें थे, उन लोगोंने अनेक प्रकारकी सुयुक्तियों और कुयुक्तियोंमें केवल इसी एक अभिनव युक्तिकी अवतारणा की थी कि छोटी अवस्थाकी विधवाओंका फिरसे विवाह न होनेके कारण ही बंगालमें कुल-त्यागिनियोंकी संख्या दिनपर दिन बढ़ती जा रही है, इसलिए विधवा विवाहके अनुकूल यह भी एक हेतु होना उचित है। सारांश यह कि दोनों पक्षोंमें इस विषयमें तुमुल युद्ध चलने लगा कि विधवा-विवाह होना चाहिए या नहीं होना चाहिए। परन्तु विधवा-विवाहके शत्रु-पक्षने भी यह बात अस्वीकृत नहीं की कि पुनर्विवाह न होनेके कारण ही विधवाएँ कुल-त्याग करती हैं। अर्थात् पुरुषमात्रने ही यह बात मान ली कि हाँ, यह बात बिलकुल ठीक है कि जब कुल-त्यागिनियोंकी संख्या बढ़ती जा रही है, तब विधवाओंको छोड़कर और कौन स्त्री कुल-त्याग करनेके लिए राजी होगी! इसलिए यही सोचा जाने लगा कि किस प्रकार विधि और निषेधका प्रयोग करके, किस प्रकार शिक्षा, दीक्षा और धर्माचारमें विधवाको निमज्जित करके, किस प्रकार उसकी नाक और सिरके बाल काटकर और उसे भद्दी या भोंडी बनाकर, किस प्रकार उसे कठोर परिश्रममें लगाकर और उसके अस्थि-चर्मको पीसकर इस अमंगलसे निस्तार प्राप्त किया जा सकता है। स्वपक्ष और विपक्ष दोनों ही इस विषयमें माथा-पच्ची करने लगे। आज भी इस मीमांसाका अन्त नहीं हुआ है। आज-कल भी रह रहकर मासिकपत्रोंमें इस विषयके प्रबन्ध निकल पड़ते हैं कि किस प्रकार सद्य-विधवाओंको रोककर रखा जा सकता है और इसके लिए पिता-माताका क्या कर्तव्य है। वस्तुतः आरम्भसे अन्त तक पुरुषोंके सामने सदा यही भय रहता है कि यदि नारियोंको रोककर न रखा

जाय तो वे बाहर निकलनेके लिए पैर उठाती ही हैं! कुछ लोग कहते हैं, "विश्वासो नैव कर्तव्यः।" और कुछ लोग और एक कदम आगे बढ़कर कहते हैं, "अंके स्थिताऽपि" और कुछ लोग इससे भी सन्तुष्ट न होकर प्रचार करते हैं, "देवा न जानन्ति।"

यहाँ यह बतलानेकी शायद आवश्यकता न होगी कि इससे 'पूजनीया' नारियोंकी मर्यादा नहीं बढ़ती। और हम समझते हैं कि इस सम्बन्धमें भी दो मत नहीं हैं कि पुरुषोंके किस संस्कारके ऊपर इतने अधिक विधि-निषेध शाखा-प्रशाखाएँ फैलाकर बड़े हो सके हैं। हम यहाँ यह प्रश्न नहीं उठावेंगे कि विधवा-विवाह अच्छा है या बुरा है। लेकिन यदि विधवा-विवाह केवल यही कहकर उचित ठहराया जाय कि यदि इस प्रकारका विवाह नहीं होगा तो स्त्रियोंको सुपथपर रखना बहुत ही कठिन होगा, तो फिर हम यही कहेंगे कि विधवा-विवाह न होना ही उचित है।

परन्तु क्या सचमुच यह बात ठीक है? पुरुषोंने बिना किसी प्रकारके विचारके यह बात मान तो ली है, परन्तु क्या कभी उन्होंने इस बातकी कोई जाँच पड़ताल भी की है कि क्या विधवाएँ ही घरसे बाहर निकलनेके लिए दिन-रात उद्यत रहती हैं? क्या इस बातका प्रचार करनेके समय और इस विश्वासको बद्धमूल करनेके समय उन्होंने एक बार भी इस बातका विचार किया है कि हम बिना किसी दोष या अपराधके ही नारीत्वपर कितने गहरे कलंककी छाप लगा रहे हैं?

विलायतके एक बहुत बड़े दार्शनिकने कहा है कि जिस प्रकार गुलामोंका व्यापार "Sum of all villainy" अर्थात् सारी बदनामियोंका घर है, उसी प्रकार वेश्या-वृत्ति भी "Sum of all degradation" सारे पतनोंका घर है। हमने यहाँ विदेशकी ही बात उठाई है, क्योंकि स्वदेशकी बात उठानेका हमें साहस नहीं होता। हमारे यहाँके दार्शनिक तो देवताओंकी तरह इस देशके स्वर्गमें ही रहते हैं, और यदि ये गुस्सेमें आकर शाप दे बैठें तो इनका शाप भी ऋषि-मुनियोंके शापसे कुछ कम फल-प्रद नहीं होता! जो हो, अगर विदेशियोंकी ही बात ली जाय तो क्या इतनी बड़ी हीनतामें डूबनेके लिए नारियाँ दिन-रात ही उन्मुख रहती हैं? और क्या इतनी बड़ी पाशविकता ही नारीका स्वाभाविक चरित्र है?

पुरुष अपनी जबरदस्तीके कारण कह बैठेगा 'हाँ' और नारी अपना

संकीर्ण अभिमान रखकर कहेगी, 'नहीं।' यदि वास्तवमें इस बातकी जाँच-पड़ताल की जाय और एक काल्पनिक उत्तर देनेकी चेष्टा की जाय तो फिर बराबर तर्क ही चलता रहेगा। इसलिए अब हम यही दिखलाते हैं कि जाँच-पड़ताल करनेपर क्या उत्तर मिलता है।

बारह-तेरह बरस पहलेकी बात है कि एक भले आदमी बंगालमें कुल-त्याग करनेवाली बंगाली स्त्रियोंका इतिहास संग्रह कर रहे थे। उसमें भिन्न भिन्न जिलोंकी हजारों हतभागियोंके नाम, पते, उम्र, जाति-परिचय और कुल-त्यागका संक्षिप्त विवरण दिया गया था। लेकिन घरमें आग लग जानेके कारण वह पुस्तक जल गई और हम समझते हैं उसका जल जाना अच्छा ही हुआ। इसलिए यदि कोई ठीक प्रमाण माँगा जाय तो हम शायद नहीं दे सकेंगे; लेकिन आदिसे अन्त तक उसकी सारी कहानी हमें याद है। हिसाब लगानेपर हम यह देखकर चकित हो गये थे कि उन अभागिनियोंमेंसे सौमें सत्तर स्त्रियाँ सधवा थीं, बाकी केवल तीस स्त्रियाँ ही विधवा थीं। प्रायः उन सभीके कुल-त्याग करनेका कारण लिखा हुआ था—अत्यधिक दरिद्रता और पति आदिका असहनीय अत्याचार तथा उत्पीड़न। सधवाओंमेंसे सभी प्रायः नीच जातिकी थीं और विधवाओंमेंसे सभी प्रायः उच्च जातियोंकी थीं। नीच जातिकी सधवाओंने केवल यही उत्तर दिया था कि हम लोगोंको खाने-पहननेको नहीं मिलता था। दिनको हम लोग उपवास करती थीं और रातको स्वामीकी मार खाती थीं। अच्छे कुलकी विधवाओंने यह बतलाया था कि भाई अथवा भौजाई अथवा ससुर-जेठ आदिके अत्याचार न सह सकनेके कारण हमने यह काम किया है। यह बात नहीं है कि इन सभीका कहना सच हो, लेकिन फिर भी सब बातोंपर जब ध्यान-पूर्वक विचार किया जाता है, तब ये सब बातें प्रायः सच ही मालूम होती हैं।

जिस प्रकार अच्छे कुलोंकी विधवाएँ पतिके न रहने पर निरुपाय होती हैं, ठीक उसी प्रकार नीच जातियोंकी सधवाएँ स्वामीके मौजूद रहनेपर भी निरुपाय होती हैं। लेकिन उन नीच लोगोंकी विधवाओंकी अवस्था अच्छे कुलकी विधवाओंसे अच्छी होती है। इसका कारण यह है कि नीच घरकी स्त्रियाँ जब विधवा हो जाती हैं तब वे किसीका मिथ्या भय नहीं करतीं। वे बहुत कुछ स्वाधीन हो जाती हैं। वे हाट-बाजारमें जाती हैं, परिश्रम करती हैं, धान कूटती हैं और आवश्यकता होनेपर दासी-वृत्ति भी करने लगती हैं।

इसलिए अच्छे उपायोंसे जीविका-निर्वाह करना उनके लिए सहज होता है। बस, वे यही करती हैं। उन्हें कुल-त्याग करनेकी आवश्यकता ही नहीं होती और वे कुल त्याग नहीं करतीं। पर उनकी सधवाओंके लिए यह रास्ता बन्द होता है। पतिके मौजूद रहनेपर न तो वे कोई परिश्रम करने पाती हैं और न खाने पहननेको ही पाती हैं। पति उनके खाने पहननेको तो जुटा नहीं सकते; खाली मार-पीटकर ही शासनकी व्यवस्था कर सकते हैं। बंगालकी एक प्रसिद्ध कहावतका आशय है, "खाना-कपड़ा देनेको कोई नहीं और घूसा मारनेको गोसाईं (पति)।" यहाँ यह बात लिखकर पूरी तरहसे नहीं बतलाई जासकती कि बंगालके निम्न श्रेणीके लोगोंमें यह बात कहाँ तक ठीक है और कितने अधिक दुःखसे यह कहावत बनी है।

उधर भले घरकी विधवाओंको अवस्था ठीक छोटी जातियोंकी सधवाओंकी तरह है। क्योंकि भले घरकी विधवाओंका स्वाधीन रूपसे शारीरिक परिश्रम करके जीविका अर्जन नहीं करने दिया जाता; और इसका कारण यह है कि इससे उनके पितृ-कुल अथवा श्वसुर-कुलकी मर्यादाकी हानि होती है। लेकिन वास्तवमें भले घरमें विधवाओंकी जो अवस्था होती है, वह किसीसे छिपी नहीं है। हमने भी इससे पहले कई बार उस अवस्थाका वर्णन किया है। इससे पता चलता है कि सौमेंसे सत्तर हतभागिनी स्त्रियाँ अन्न और वस्त्रके अभावके कारण तथा आत्मीय स्वजनोंके अनादर, उपेक्षा तथा उत्पीडनके कारण ही गृह त्याग करती हैं, कामके पीड़नके कारण नहीं करतीं और यही कारण है कि कुल त्याग करनेवाली स्त्रियोंमें विधवाओंकी अपेक्षा सधवाओंकी ही संख्या अधिक होती है।

लेकिन पुरुषोंने बिना किसी प्रकारका अनुसन्धान किये ही यह निश्चय कर लिया है कि कुल-त्याग केवल विधवाएँ हीं करती हैं, इसलिए कठोर विधि-निषेधोंके द्वारा ही उनका शासन करना ठीक है। लेकिन क्या कोई पुरुष यह बात माननेके लिए तैयार होगा कि वास्तवमें कुल-त्याग पतियुक्ता स्त्रियाँ ही अधिक करती हैं और वह भी केवल पुरुषोंके अत्याचारों और उत्पीडनोंके ही कारण करती हैं?

एक ओर तो पुरुष जिस प्रकार दरिद्रता और अकथनीय उत्पीडनोंसे नारीकी स्वाभाविक शुद्ध बुद्धिको विकृत करके उसे घरमें अस्थिर कर देता है, दूसरी ओर वह उसी प्रकार उसी नारीको अत्यन्त मधुर सुखोंके प्रलोभनोंसे

धोखा देकर घरसे निकाल ले जाता है। पुरुषोंको तो कोई डर होता नहीं है क्योंकि वह जब तक चाहता है तब तक सुख भोग करता है और जब चाहे तब लौट कर घर जा सकता है। जब वह लौटकर अपने घर जाता है तब एक-दो दिन ही घरके कोनेमें अनुतप्त भावसे चुपचाप बैठा रहता है। इसके बाद आत्मीय स्वजन उसके लौट आनेसे प्रसन्न होकर उसे साहस दिलाते हुए कहने लगते हैं, "अरे इसमें क्या है! ऐसा तो होता ही रहता है। पुरुषको कोई दोष नहीं होता। आओ, बाहर आओ।" वह भी उस समय हँसता हुआ बाहर निकल आता है और जोर जोरसे चिल्लाकर इस बातका प्रचार करने लगता है कि अगर नारीका पैर नीचे ऊँचे पड़ जाय तो उसका किसी प्रकार मार्जन नहीं किया जा सकता!

ठीक ही तो है। चाहे जिस कारणसे हो, जो नारी केवल एक बार भी भूल करती है, उसके साथ हिन्दू किसी प्रकारका सम्पर्क नहीं रखता। इसके उपरान्त क्रमशः जब वह भूल उसके जीवनमें पापमें सुप्रतिष्ठित हो जाती है और जब दिनपर दिन उसका समस्त नारीत्व निचुड़कर बाहर हो जाता है,—अर्थात जब वह वेश्या हो जाती है, तब फिर उसी वेश्याके अभावमें हिन्दूका स्वर्ग भी सर्वांगसुन्दर नहीं होता! उसकी इतनी अधिक आवश्यकता मानी जाती है!

इस देशके लोगोंने जिस प्रकार आदरपूर्वक श्रीकृष्णके 'काला सोना' 'काला माणिक' आदि अष्टोत्तर शत नाम रक्खे थे, हम समझते हैं कि संस्कृत साहित्यमें भी वेश्याके आदरपूर्ण नाम शायद उससे कम नहीं हैं। इन्हीं सब बातोंसे यह समझा जा सकता है कि स्वार्थपरता और चरित्रगत पाप-बुद्धि नर और नारीमेंसे किसमें अधिक है। साथ ही यह भी पता चल जाता है कि समाजमेंसे इस पापको बहिष्कृत करनेके लिए किसके सम्बन्धमें शास्त्रोंमें कठोर नियम होने चाहिए। सामाजिक जीवनको विशुद्ध रखनेके लिए नर और नारीमेंसे किस पर अधिक दृष्टि रखना कर्त्तव्य है और किसे अधिक दंड देना आवश्यक है।

लेकिन नारीकी भूल और भ्रान्ति तो समाज एक पाई भी क्षमा न करेगा; और पुरुषोंकी सोलह आने क्षमा कर देगा। इसका कारण क्या है? कारण है सिर्फ पुरुषकी जबरदस्ती। कारण यही है कि समाजका अर्थ है केवल 'पुरुष' उसका अर्थ 'नारी' नहीं है। काम घृणाका है, इसीलिए पुरुष

नारीसे घृणा करता है। पुरुषको घृणा करनेका अधिकार दिया गया है, नारीको वह अधिकार नहीं दिया गया है। पुरुष चाहे कितना ही अधिक घृणित क्यों न हो, परन्तु वह पति है। भला पतिसे स्त्री कैसे घृणा कर सकती है? शास्त्र तो कहते ही हैं कि पति चाहे कैसा ही क्यों न हो, सती स्त्रीकेके लिए तो वह देवता ही है। और उसी देवताकी यदि मृत्यु हो जाय, तो उसके चरण-कमलोंको अपनी गोदमें रखकर अनुगमन करना आवश्यक है। कमसे कम इस युगमें तो उसीके चरण-कमलोंका स्मरण करके और जीवन्मृत होकर रहना ही वास्तवमें नारीत्व है!

कुछ लोग वैज्ञानिक तर्ककी अवतारणा करते हुए कहते हैं कि यदि भावी वंशधरोंके भले-बुरेपर ध्यान रखकर देखा जाय तो नारीकी भूल और भ्रान्तिसे ही क्षति होती है, पुरुषकी भूल-भ्रान्तिसे नहीं होती। लेकिन चिकित्सक लोग यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि न जाने कितनी कुल-स्त्रियोंको अ-सतियोंके पाप, कुत्सित व्याधियाँ तथा यन्त्रणायें भोगनी पड़ती हैं और अनेक शिशुओंको जन्म-रोगी होकर जन्म-धारण करना पड़ता है तथा जन्म-भर अपने पिता पितामहके दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। पर शास्त्र इस सम्बन्धमें अस्पष्ट, लोकाचार निर्वाक् और समाज मौन है। और इसका प्रधान कारण यही है कि शास्त्रोंमें इस सम्बन्धमें जो वाक्य आदि हैं, उन सबमें थोथी आवाज है। पुरुषोंकी इच्छा तथा अभिरुचि ही असल बात है और वही समाजकी वास्तविक सुनीति है। मनु, पराशर और हारीत आदिकी दोहाई देना व्यर्थ है। पुरुष अपनी स्त्रीकी आँखोंके सामने ही अन्याय तथा अधर्म करेगा और अपने सतीत्वको अक्षुण्ण रखनेके लिए उसकी स्त्री एक बात तक मुँहसे न निकाल सकेगी,—क्योंकि शास्त्रोंका वाक्य ठहरा! यहाँ तक कि पुरुषके बीभत्स तथा जघन्य रोग भी उसे जानते बूझते हुए अपने शरीरमें संक्रामित करने पड़ेंगे। भला इससे बढ़कर नारीके लिए गौरव-हीनताकी और कौन-सी बात हो सकती है?

तथापि अन्यान्य देशोंमें divorce या तलाककी प्रथा है। इसलिए वहाँकी रमणियोंके लिए कुछ उपाय है। लेकिन हम लोगोंका यह जो स्वयं भगवानका देश है, जिस देशके शास्त्रोंके समान और कहीं शास्त्र नहीं हैं, जहाँके धर्मके समान और कोई धर्म नहीं है, जहाँ जन्म न ले सकनेपर मनुष्य मनुष्य ही नहीं हो सकता, उस देशकी नारियोंके लिए इतना भी रास्ता खुला

नहीं रक्खा गया है । इस देशके पुरुष स्त्रियोंको हाथ-पैर बाँधकर खूब मारते पीटते हैं और वे बेचारी हिल-डुल भी नहीं सकतीं । शायद इसलिए पुरुष खूब उछल कूद मचाकर बाहर कह सकते हैं कि भला इस देशकी स्त्रियोंके समान सहिष्णु जीव संसारमें और कहाँ हैं ?

हम भी यह मानते हैं कि ऐसी सहिष्णु स्त्रियाँ और कहीं नहीं हैं । लेकिन जिस कारणसे नहीं हैं वह कारण क्या ऐसा है जिसके लिए पुरुष अपनी बड़ाई कर सके ? जब किसी विदेशी समाचारपत्रमें यह खबर निकलती है कि अमुकने अमुकके साथ पति-स्त्रीका सम्बन्ध विच्छेद करनेके लिए अदालतमें मुक़दमा दायर किया है, तब इस देशके समाचारपत्रोंके सम्पादकोंके आनन्दका ठिकाना नहीं रह जाता । और वे यह चिल्लाते हुए सारा शहर सिर पर उठा लेते हैं कि आँख खोलकर देखो, यह है विदेशी सभ्यता !

ऐसे लोगोंके मनका भाव यही रहता है कि यदि हम दूसरोंके दोषोंका प्रचार कर सकेंगे, तो हमारे गुण आपसे आप सिर उठाकर सब लोगोंके सामने आ जायँगे । विदेशी लोग भी यह बात समझते हैं कि divorce या तलाक वांछनीय नहीं है, लेकिन मार खाकर वे लोग चुप नहीं रह सकते । वे भी मार-पीट करने लगते हैं । अब मार-पीट कोई ऐसी चीज तो है नहीं जो बिलकुल चुप-चाप हो जाय: इसलिए उसकी बात बाहरवाले भी सुनते हैं और इसीलिए शत्रु भी खूब हँसनेका अवसर पाते हैं । लेकिन यदि यह पूछा जाय कि जिन कारणोंसे दूसरे देशोंमें इस तरहके मुकदमें दायर होते हैं, क्या वे कारण हिन्दुओंके घरोंमें नहीं होते, तो हमारा विश्वास है कि जो बहुत बड़ा निर्लज्ज होगा वह भी शायद यह न कह सकेगा कि वे कारण हमारे यहाँ नहीं होते । अब यदि बात सही हो तो फिर प्रसन्न होनेका कौन-सा कारण रह जाता है ? क्या मुकदमा ही असल चीज़ है और उसका कारण कोई चीज़ ही नहीं है ?

उन देशोंमें भी किसी समय तलाक नहीं था, लेकिन मध्ययुगकी अकथनीय हीनतामें पड़नेके कारण ही किसी समय उन लोगोंको चैतन्य हुआ था । इस सम्बन्धमें कहा गया है, "Church's irrational rigidity as regards divorce" tended to foster disorder and shame. Sexual disorder increased. Woman became cheaper in the esteem of men, and the narrowing of her interest to domestic work, the

desire to please men proceeded apace" (अर्थात्, तलाकके सम्बन्धमें चर्च या धर्मकी ओरसे जो ना-समझीकी कड़ाई होती थी, उसके कारण अव्यवस्था और लज्जाजनक बातोंकी वृद्धि होती थी । पुरुषों और स्त्रियोंका व्यभिचार बराबर बढ़ता था । पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्रियोंका मूल्य बहुत कम रह गया था, जिससे घरके काम-धन्धोंकी ओरसे तो स्त्रियोंका ध्यान हटता जाता था और पुरुषोंको प्रसन्न करनेकी इच्छा बराबर बढ़ती जाती थी । शास्त्रोंकी इस कट्टरताने स्त्रियोंको कितने अधिक दुःखोंमें डाल दिया था और उन्हें कहाँ तक नीचे गिरा दिया था, इसकी अनेक प्रकारसे बहुत अच्छी आलोचना आचार्य के० पियरसन (K. Pearson) ने अपने Ethics of Free Thought (स्वतन्त्र विचारका आचार-शास्त्र) नामक ग्रन्थमें की है । हम स्त्री मात्रसे यह अनुरोध करते हैं कि वे इसे एक बार अवश्य पढ़ें ।

लेकिन हमारी इन बातोंसे पाठकोंको यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि हम divorce या तलाकको कोई अच्छी चीज बतला रहे हैं । मार-पीट भी कोई अच्छी चीज नहीं है और अवश्य ही कोई इस बातकी कामना नहीं करता कि समाजमें मार-पीट बराबर होती ही रहे । लेकिन जब हम लोगोंमें स्त्रीको त्याग कर देना प्रचलित है, तब वह त्याग स्त्री और पुरुष दोनोके ही पक्षमें क्यों उचित नहीं है ? स्त्री क्यों न अपने पुरुषको त्याग कर सके ?

अवश्य ही पुरुष यह बात किसी तरह न मानेगा कि मेरे समान त्याग करनेकी क्षमता मेरी स्त्रीमें भी रहे । परन्तु साथ ही वह इस बातका भी कोई संगत कारण नहीं बतला सकेगा कि क्यों न रहे, और अन्यान्य देशोंकी नारियोंकी भाँति उसे भी वह अधिकार क्यों न दिया जाय । वह तो केवल जल-भुन कर यही उत्तर देगा—छीः, भला यह भी कोई बात है !

हाँ, यह कोई बात नहीं है, क्योंकि अपराध करनेकी जो उसे अबाध स्वाधीनता है, उसमें कमी हो जायगी; और अपनी स्वाधीनतामें कमी वह नहीं चाहता । विशेषतः इस देशके पुरुष जो स्वयं ही कायर और भीरु होते हैं, जो अन्याय देशोंके पुरुषोंकी तुलनामें नारियोंकी ही तरह निरुपाय होते हैं, जो नारियोंके सामने पुरुषोंके रूपमें अपना परिचय देनेकी यथार्थ क्षमतासे वंचित हैं, वे कायरोंकी तरह अपनी अपेक्षा अधिक दुर्बल और निरुपायका ही उत्पीड़न करके अपने कर्तव्यके पालनका आनंद प्राप्त करना चाहेंगे; और उनके लिए यह कोई स्वभाव-विरुद्ध बात न होगी । यह समझना कठिन

नहीं है कि वे मर जाने पर भी स्वेच्छासे इस अधिकारमेंसे एक पाई भी छोड़ना नहीं चाहेंगे। यह भी जानी हुई बात है कि शास्त्रोंकी आड़ लेंगे, विज्ञानकी दोहाई देंगे और सुनीतिका छद्म अभिनय करेंगे। परन्तु अब नारियोंके भी समझने-बूझनेका समय आ गया है। जिस पुरुषने यह जानकर कि मुझसे मार्गमें स्त्रीकी रक्षा नहीं हो सकेगी—"पथि नारी विवर्जिता" वाला शास्त्र बनाया है, उसके शास्त्रका भी उतना ही मूल्य मानना उचित है; और यही सबसे अच्छा न्याय है।

हमें ऐसा मालूम होता है कि हमारी ये सब बातें पुरुषोंको अच्छी नहीं लग रही हैं और साथ ही उनकी यह इच्छा भी नहीं होती है कि वे इन बातोंको अपने अन्तःपुर तक पहुँचावें। परन्तु जिस देशमें अर्थशून्य अत्याचार और अन्यायकी कोई सीमा ही न हो उस देशमें किसी न किसी दिन तो नारी इसका कारण जानना ही चाहेगी फिर चाहे पुरुष यह बात पसन्द करे और चाहे न करे। फ्रान्सके नेपोलियनने एक दिन मैडम कन्डोरसेटसे कहा था—"I do not like woman to meddle with politics."(अर्थात्, मैं यह नहीं चाहता कि स्त्रियाँ राजनीतिमें हस्तक्षेप करें।) इसपर मैडमने उत्तर दिया था "You are right General, but in a country where it is the custom to cut off the heads of women, it is natural that they should wish to know the reason, why." (अर्थात्, सेनापति महोदय, आपका यह कहना तो बहुत ठीक है, परन्तु जिस देशमें स्त्रियोंके सिर काटनेकी प्रथा हो, उस देशमें यह बात स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ भी यह जानना चाहें कि हमारे सिर क्यों काटे जा रहे हैं।)

आज-कलके पंडित लोग भी यह बात अस्वीकृत नहीं करते कि मनुष्य जिस समय मनुष्य नहीं बना था, उससे पहले भी उसे कार्य और कारणके अविच्छिन्न सम्बन्धका आभास मिल गया था। वह जिस समय बिलकुल घोंघा या शंख था, उस समय भी वह अकस्मात् मेघकी छायामें सूर्यके प्रकाशको मलिन होते हुए देखकर भयसे मुँह बन्द करके आत्म-रक्षाकी चेष्टा करता था। उसे पता चल गया था कि यह छाया केवल छाया ही नहीं है, इसके साथ और भी कुछ आ रहा है। और उसे इसी बातका भय होता था कि जो आ रहा है, वह प्रबल है और निकटवर्त्ती है और सम्भवतः वह हमारा अपकार करेगा। छायावाला कारण देखकर ही उसने कार्यका

अनुमान कर लिया था और अपने शरीर-दुर्गका द्वार बन्द कर लिया था। जीवनकी क्रमशः उन्नति होनेका यह कार्य जब संसारमें सत्यके रूपमें स्वीकृत हो गया, तबसे अब तक मनोविज्ञानसम्बन्धी जितनी पुस्तकें बनी हैं, उन सबमें इसी एक बातकी बार बार आलोचना हुई है कि मनुष्यकी बुद्धि और प्रवृत्ति ठीक उसके शरीरकी ही तरह धीरे धीरे उन्नत हुई है। इसलिए यद्यपि साधारण पशुओंकी अपेक्षा मनुष्य इन सब विषयोंमें बहुत अधिक बढ़ गया है, तो भी किसी प्रकार यह बात अस्वीकृत करनेका कोई मार्ग नहीं है कि पशुओंके साथ उसका कुछ न कुछ सम्पर्क या पशु-भावकी ओर उसका कुछ न कुछ खिंचाव रह ही गया है। यह पार्थक्य परिणाम-गत है, प्रकृति-गत नहीं है। यदि इस सत्यको अच्छी तरह समझ कर इस बातका पता लगाया जाय कि जिन्हें हम लोग पशु कहते हैं, उनमें नारीका (मादाका) मूल्य भी है या नहीं, तो हमें पता चलता है कि हाँ, है। दो सिंह प्राणान्त करनेवाला युद्ध करते रहते हैं और सिंहिनी चुपचाप देखा करती है। उनमेंसे जो विजयी होता है, उसीके साथ वह धीरे धीरे चली जाती है। वह एक बार उलटकर भी यह नहीं देखती कि दूसरा सिंह जीता है या मर गया। इसके बाद सिंह और सिंहिनीका जोड़ा कुछ दिनोंतक एक साथ रहता है और उसके उपरान्त जब सिंहिनीको सन्तान होनेको होती है तब वे दोनों अलग हो जाते हैं। सन्तानके लालन-पालन और रक्षा करनेका सारा भार केवल जननीपर ही आ पड़ता है। सिंह महाशय सन्तानका कोई उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लेते; बल्कि सुभीता होनेपर वे उसका संहार करनेकी चेष्टामें लगे फिरते हैं। बन्दर और गोरिल्लामें भी प्रायः इसी तरहकी प्रथा देखनेमें आती है। इससे लाभ यह होता है कि ऐसी जातियाँ बराबर ध्वंसकी ओर अग्रसर होती रहती हैं। यदि इस बीचमें कुछ अनुकूल कारण न रहते और गहन वनों या अत्यन्त एकान्त पर्वत-कन्दराओंमें सन्तानको रक्षाका आश्रय न मिलता, तो शायद हम लोग इन पशुओंके नाम भी न जान सकते। बहुत पहले ही इन सबका अन्त हो चुका होता।

इस घटनापर थोड़ा ध्यानपूर्वक विचार करते ही एक विलक्षण आत्मघाती व्यापार दिखाई देता है। ये पशु अपनी वंश-वृद्धिकी नैसर्गिक तृष्णा और उत्तेजनाके वश हो लड़ जाते और प्राण दे देते हैं; पर साथ ही इसकी अन्तिम सफलताकी ओर वे कभी एक बार उलटकर भी नहीं देखते हैं।

इसके सिवा एक और बात यह भी है कि जो जन्तु प्राण देता है, वह अपनी असह्य प्रवृत्तिके यूप-काष्ठसे ही अपना गला काट लेता है, नारीके लिए नारीके चरणोंमें आत्म-विसर्जन नहीं करता । इसलिए यहाँ यदि कुछ मूल्य हो सकता है, तो वह केवल स्वयं उसकी प्रवृत्तिका ही हो सकता है, नारीका नहीं । इन दोनों बातोंको ध्यानमें रखकर जब हम पशुओंका राज्य पार करके मनुष्यके राज्यमें पैर रखते हैं, तब देखते हैं कि यहाँ भी इस व्यापारका असद्भाव घटित नहीं हुआ है । और आज इस पाशव प्रवृत्तिको हमारे समाजमें चाहे कितना ही बड़ा क्यों न कहा जाता हो और नर-नारीके स्वर्गीय प्रेमकी जन्म-भूमिको चाहे कितना ही बड़ा स्वर्ग क्यों न बतलाया जाता हो, परन्तु वास्तवमें वह सत्य नहीं है—है वह कोरी कल्पना ही ।

यहाँ हम दो दृष्टान्त देकर यही बतलाना चाहते हैं । लेकिन यह बतलानेसे पहले वह बात हम विशेष रूपसे बतला देते हैं कि क्रमोन्नतिके फलसे नर और नारीके सहस्रमुखी स्नेह तथा प्रेमका जो मधुर चित्र वाल्मीकिके हृदयमें, व्यासके हृदयमें और कालिदासके हृदयमें उद्भूत होकर सारे विश्वमें प्रतिबिम्बित हुआ है, वह स्वर्गीय वस्तुसे किसी अंशमें हीन नहीं है । यह कहकर उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि उसका जन्म नीच कुलमें हुआ है । यदि कोहिनूरको यह ताना दिया जाय कि तुम पत्थरके कोयला हो या उपनिषदोंके ब्रह्मज्ञानको यह कहकर लज्जित किया जाय कि वह तो भूतोंके भयसे उत्पन्न हुआ है, तो उन्हें उनके यथार्थ मूल्यसे किसी प्रकार वंचित नहीं किया जा सकता । ये सब बातें हम भी जानते हैं । और हम ये बातें जानते हैं, इसीलिए हमने इनके जन्मका उल्लेख किया है और इसीलिए हम लोगोंसे कहते हैं कि वे मनुष्योंके आदिम युगके इतिहासकी ओर देखकर ही यह निश्चित करें कि धीरे धीरे यह मूल्य आज वास्तवमें कितना अधिक बढ़ गया है । यदि हम यह जानना चाहते हों कि वह पाशव वृत्ति किस प्रकार अद्भुत और अनिर्वचनीय प्रेम तथा पातिव्रत्यके रूपमें रूपान्तरित हुई है, किस प्रकार नरकी प्रवृत्तिके मान-दण्डसे पहलेवाला आँका हुआ नारीका मूल्य आगे चलकर भावुकोंके हृदयमें देवताके अपरिमेय मूल्यके साथ एक आसनपर जा बैठा है और साथ ही यदि हम यह भी जानना चाहते हों कि वह उसका यथार्थ स्थान है या नहीं, तो फिर हमें साहसपूर्वक बिलकुल आरम्भसे ही देखनेकी चेष्टा करना उचित है । केवल बलवान् लोग ही अपने

शारीरिक बलके भरोसे यह कह सकते हैं कि हम आँखें बन्द करके जो जीमें आवेगा, वह कहेंगे, जैसी हमारी खुशी होगी, वैसा शास्त्र बनावेंगे और अपनी इच्छाके अनुसार दाम देंगे। परन्तु सत्यके बलपर और न्यायके बलपर ऐसा नहीं किया जा सकता। मूल्यका एक नैसर्गिक नियम होता है: और वह नियम भी विश्वके अद्वितीय तथा एक मात्र नियमके द्वारा ही नियन्त्रित है। उसे कृत्रिम उपायोंसे बढ़ाने-घटानेका अन्तमें कोई अच्छा फल नहीं होता। सेन राजाद्वारा कृत्रिम रूपसे कुलीन बनाये गये बंगाली ब्राह्मणोंका दाम क्रमशः बढ़ता ही नहीं चला गया, पेरूके इंकाओंके जबर्दस्तीके आभिजात्य (कुलीनता) ने उन्हें ध्वंस होनेसे नहीं छोड़ा, यह एक ऐसा सत्य है, जिसे यदि कोई व्यक्ति अथवा कोई जाति अपने आलस्य, अज्ञान अथवा दम्भके कारण अस्वीकार करेगी, तो उसके सम्बन्धमें इस विषयमें कुछ भी सन्देह न समझना चाहिए कि वह अपने कक्षसे गिरे हुए उपग्रहकी तरह अनिवार्य रूपसे दिनपर दिन मृत्युके पथपर ही तेजीके साथ आगे बढ़ती रहेगी।

संसारकी आदिम मानव जातिकी रीति-नीतिकी ओर देखनेसे इस सत्यकी बहुत ही स्पष्ट रूपसे उपलब्धि हो सकती है। इससे पहले हमने मुख्यत: सभ्य जातियोंकी ही आलोचना की है और अभीतक इसी बातका निरूपण करनेका प्रयास किया है कि उन्होंने नारीका मूल्य कहाँ स्थिर किया है। अब हम यह देखना चाहते हैं कि जो लोग अभीतक सुसभ्य नहीं हुए हैं, उन्होंने नारीका क्या मूल्य दिया है !

मूल्य किस प्रकार दिया जाता है? अमेरिकाके असभ्य चिपिवायन लोगोंके सम्बन्धमें हरबर्ट स्पेन्सरने कहा है—"Men wrestle for any woman to whom they were attached." (अर्थात्, जिस स्त्रीके प्रति पुरुषोंका अनुराग होता है, उसके लिए वे आपसमें कुश्ती लड़ते हैं।) बहुत अच्छी बात है। और इन्हीं लोगोंके सम्बन्धमें हार्न साहब सौ-वर्ष पहले अपनी उत्तर-महासमुद्र-भ्रमण-सम्बन्धी पुस्तकमें एक जगहपर लिख गये हैं कि यदि ये लोग अपनी माता—सगी माता (विमाता नहीं)—को भी सुन्दरी समझते हैं, तो अपने वृद्ध पिताके यहाँसे उसे जबर्दस्ती निकाल लाते हैं और उसके साथ विवाह कर लेते हैं। इन्हीं लोगोंके सम्बन्धमें हर्बर्ट स्पेन्सरने अपनी Descriptive Sociolgy (=वर्णनात्मक समाजशास्त्र) नामक पुस्तकमें जो तथ्य संगृहीत किये हैं, उनमें एक स्थानपर लिखा है—"In the Chipp-

ewayan tribes divorce consists of neither more nor less than a good drubbing and turning the woman out of doors." (अर्थात्, चिंपवायन जातियोंमें जब कोई पति अपनी पत्नीको तलाक देना चाहता है, तब वह उसे खूब अच्छी तरह मार-पीटकर घरसे बाहर निकाल देता है। बस तलाकके लिए उसे इसके सिवा और कुछ भी नहीं करना पड़ता।) आस्ट्रेलियाके आदिम निवासियोंके सम्बन्धमें कहा गया है—"Fight with spears for possession of a woman."(अर्थात्, किसी स्त्रीपर अधिकार पानेके लिए वे लोग आपसमें भालोंसे लड़ते हैं।) अमेरिकाकी डगरिव जातियोंके सम्बन्धमें कहा गया है—"Fight just like stags." (अर्थात्, वे लोग आपसमें बारहसिंगोंकी तरह लडते हैं।) अमेरिकाकी मन्त्र जातियोंके सम्बन्धमें कहा गया है, "fight like natural enemies." (अर्थात्, वे लोग आपसमें प्राकृतिक शत्रुओंकी भाँति लड़ते हैं।) और डगरिव जातियोंके सम्बन्धमें कहा गया है, "use like beasts of burden" (अर्थात्, वे लोग अपनी स्त्रियोंसे उसी तरह काम लेते हैं, जिस तरहका काम भार ढोनेवाले पशुओंसे लिया जाता है।) और मन्त्र जातिका एक एक आदमी अपने जीवनमें चालीस पचास बार विवाह करता है। अतएव यह पता चलता है कि इन असभ्य लोगोमें स्त्रीको प्राप्त करनेके लिए युद्ध और अन्य पशुओंकी नैसर्गिक प्रवृत्ति, और उसे त्याग करनेका प्रयोजन भी ठीक वैसा ही है। इनके यहाँ नारीका मूल्य एक कानी कौड़ी भी नहीं है। स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। ज्यों ही पति युद्धमें भाला लगनेके कारण घायल होकर जमीनपर गिरता है, त्यों ही पतिव्रता स्त्री अपना सारा सामान अपने सिरपर रखकर चुपचाप विजेताका अनुसरण करती है। यहाँ जंगली पशुओंकी तरह नर-नारीका कोई विशेष सम्पर्क भी नहीं है—किसीके निकट किसीका कुछ मूल्य भी नहीं है।

उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुने जब अपनी माताको अपरिचित ब्राह्मणके हाथों बलपूर्वक अपहृत होते हुए देखा था, तब अपने पितासे पूछा था कि यह मेरी माँको कहाँ लिये जा रहा है? यह भी समाजकी वही अवस्था है। इस अवस्थामें स्त्री मात्र पुरुषोंकी सम्पत्ति होती है। पुरुष जब तक स्त्रीको बलपूर्वक अपने अधिकारमें रख सकता है, तब तक उसे रखता है और जब

अच्छी नहीं लगती, तब उसका परित्याग कर देता है। मतलब यह कि अब जहाँ जी चाहे वहाँ जाओ और चरो-चुगो।

इसके बादवाली अवस्था पलिनेशिया और न्यू केलिडोनिया तथा फीजी द्वीपकी असभ्य जातियोंमें दिखाई देती है। स्त्रीको प्राप्त करनेके लिए ये लोग आपसमें लड़ाई करते हैं; और जो स्त्री उन्हें पसन्द होती है, उसके लिए ये अपने प्राण तक संकटमें डालकर उसे अपने घर ले आते हैं। लेकिन जब उनकी पसन्दका खात्मा हो जाता है अर्थात् जब वे लोग अपनी स्त्रीकी ओरसे विमुख हो जाते हैं, तब वे उसे घरसे निकाल बाहर नहीं करते। बल्कि एडमिरल फिजराय, हम्बोल्ट और विल्केस आदि अनेक लोगोंका यह कहना है कि वे उसे मारकर खा जाते हैं! इसे भी, हम कोई बहुत खराब व्यवस्था नहीं कह सकते।

इसके बादकी अवस्था उस समय आती है, जिस समय स्त्रियोंकी गणना सम्पत्तिमें होने लगती है। हरबर्ट स्पेन्सरने अपनी Principles of Sociology (समाजशास्त्रके सिद्धान्त) नामक पुस्तकमें लिखा है a Chippewayan chief said to Hearne, "Women were made for labour. One of them can carry or haul as much as two men can do." (अर्थात्, एक चिपिवायन सरदारने एक बार हार्नसे कहा था कि स्त्रियाँ परिश्रम करनेके लिए ही बनाई गई हैं। एक स्त्री उतना ही बोझ ढो या घसीट सकती है, जितना दो पुरुष ढो या घसीट सकते हैं।) इस ग्रन्थमें बैरो साहबकी Interior of Southern Africa नामक पुस्तकसे एक स्थानपर उद्धृत किया है, "The woman is her husband's ox, or as a kaffir once said to me--she has been bought, he argued, and must therefore labour." (अर्थात्, एक काफिरने एक बार मुझसे कहा कि स्त्री अपने पतिकी बैल है: और उसने दलील दी कि वह खरीदी जाती है, इसलिए उसका काम परिश्रम करना है।) सूटर साहबने लिखा है—"A Kaffir who kills his wife can defend himself by saying. "I have bought her once for all." (अर्थात्, जो काफिर अपनी स्त्रीको मार डालता है, वह यह कहकर अपना बचाव कर सकता है कि मैंने तो उसको सदाके लिए ही खरीद लिया था।).

इससे कुछ सामान्य उन्नति देखनेमें आती है असभ्य मपुची जातिमें।

उसके सम्बन्धमें कहा गया है—"A Mapuchi widow, by the death of her husband, becoms her own mistress, unless he may have left grown up sons by another wife, in which case she becomes their common concubine, being regarded as a chattel naturally belonging to the heirs of the estate." (अर्थात्, जब किसी मपुची स्त्रीका पति मर जाता है, तब यदि उस पतिकी दूसरी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न जवान लड़के न हों, तो वह स्त्री आप अपनी मालिक हो जाती है। परन्तु यदि दूसरी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न जवान लड़के हों, तो उस अवस्थामें उन सब लड़कोंकी समान रूपसे रखनी बन जाती है, मानों वह भी जमीन-जायदादकी ही तरह कोई सम्पत्ति होती है, जिसपर सब उत्तराधिकारियोंका समान अधिकार होता है।) संसारके अधिकांश स्थानोंमें स्त्री-जातिकी यही अवस्था है।

ईसाइयोंकी प्राचीन धर्म पुस्तक (Old Testament) में लेवीके चिनाओंका अपनी विधवा पुत्र-वधूको दूसरोंके हाथ बेच देनेका उल्लेख है और हमारे यहाँके शास्त्रोंमें लिखा है कि यदि कन्याका पिता अपनी कन्याका पाया हुआ मूल्य लौटा देनेमें समर्थ न हो तो हिन्दूकी विधवा पुत्र-वधूपर श्वसुर-कुलका पूरा अधिकार होता है। इस प्रकारके सभी विधान सम्पत्ति-वाचक हैं। वेरा पाज (Vera Paz) के आदिम निवासियोंके सम्बन्धमें इन्होंने लिखा है, "The brother of the deceased at once took her (the widow) as his wife even if he was married; and if he did not, another relation had a right to her." (अर्थात्, मृत व्यक्तिका भाई उस विधवाको तुरन्त ही अपनी पत्नी बना लेता था, फिर चाहे स्वयं वह विवाहित ही क्यों न हो; और यदि वह उसे पत्नी रूपमें ग्रहण नहीं करता था, तो किसी दूसरे रिश्तेदारको यह अधिकार होता था कि उसे अपनी पत्नी बना ले।) मतलब यही था कि सम्पत्ति किसी तरह हाथसे जाने न पाए। संसारकी सौमें नब्बे जातियोंके सम्बन्धमें इस कथनके एक एक अक्षरका प्रयोग किया जा सकता है।

हम History of Women's Suffrage नामक पुस्तकके कुछ वाक्य उद्धृत करके यहाँ यह दिखलाना चाहते हैं कि अमेरिकाके बोस्टन सरीखे स्थानमें भी सन् १८५० ई० तक नारीका क्या स्थान था। उक्त ग्रन्थमें यह

कहा गया है कि विवाह होनेसे पूर्व ही नारी अपनी सारी सम्पत्ति अपने भावी पतिके नाम लिख दिया करती थी और साथ ही इतना होनेपर भी—"She was not a person." " Not re-cognised as a citizen was little better than a domestic servant " "By the English Common Law her husband was her lord and master." He conld punish her with a stick ;' The Common Law of the state of Massachusets held man and wife to be one person, but that person was the husband. " She had no personal rights and could hardly call her soul her own. " (अर्थात्, वह कोई व्यक्ति नहीं होती थी ।" "वह नागरिक नहीं मानी जाती थी ।" "घरमें काम करनेवाले नौकरसे वह कुछ ही बढ़कर होती थी ।" "अँग्रेजी सार्वजनिक नियम या कानूनके अनुसार उसका पति ही उसका स्वामी और प्रभु होता था ।" "वह उसे छड़ीसे पीट सकता था ।" "मैसेचुएट्स नामक राज्यके सार्वजनिक नियम या कानूनके अनुसार पति और पत्नी दोनों एक व्यक्ति माने जाते थे, परन्तु वह व्यक्ति पति होता था ।" "स्त्रीको कोई व्यक्तिगत अधिकार नहीं प्राप्त होता था और वह अपनी आत्माको भी कठिनतासे अपनी कह सकती थी ।" साथ ही वर्तमान अमेरिकाकी नारी-जातिकी आश्चर्यजनक स्वाधीनताकी कितनी कितनी बातें नहीं सुनी जाती हैं ! पर तब तो हमारे देशकी तरह उस देशमें भी लट्ठबाजी हुआ करती थी और नालिश करनेपर भी उसका कोई प्रतिकार नहीं होता था ।

यहाँ मनमें एक प्रश्न उत्पन्न होता है । वह प्रश्न यह है कि संसारमें मानव जातिकी किस अवस्थामें नारी जातिपर पहले-पहल अत्याचार होना आरम्भ हुआ था ? जिस समय मनुष्य पशुओंके समान था, उस समय; या जब वह बहुत कुछ मनुष्य बन चुका था, उसके बाद यह अत्याचार आरम्भ हुआ था ? इस सम्बन्धमें कोई समाज-तत्त्वविद् निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कह सकता । यह बात भी ऐसी नहीं है कि इसके सम्बन्धमें कुछ कहा जा सके। और इसका कारण यही है कि प्रत्येक जातिमें, फिर चाहे वह परम सुसभ्य हो और चाहे असभ्य हो, नर और नारीका सम्बन्ध इतना अधिक जटिल और इतना अधिक रहस्यमय रहा है कि बाहरके लोग बाहरसे देखकर निश्चित रूपसे कुछ भी नहीं कह सकते । लेटूरने जिस समय सबसे पहिले इस बातका प्रचार किया था कि संसारके सभी असभ्य लोग नारी जातिको इतनी

अधिक यन्त्रणा पहुँचाते हैं, जिससे बढ़कर और कठोर यन्त्रणा हो ही नहीं सकती, उस समय उन्होंने यह बात अपनी बुद्धिपर निर्भर करके ही कही थी; और उसी समय बहुत-से लोगोंने उनकी इस बातपर विश्वास कर लिया था। परन्तु अब अनेक पण्डित धीरे धीरे इस सम्बन्धमें आस्था-शून्य होते जा रहे हैं—इस बात परसे उनका विश्वास हटता जा रहा है। वस्तुतः नर और नारीका सम्बन्ध किसी तरह ऐसा नहीं हो सकता कि उसके विषयमें इस कथनकी सत्यतापर पूरा पूरा विश्वास किया जा सके— "extreme and unmitigated oppression, constantly subjected to unimaginable cruelty and violence by the savage." (अर्थात्, जंगली लोग अपनी स्त्रियोंपर चरम-सीमाका और अत्यधिक अत्याचार करते हैं और निरन्तर उनके साथ कल्पनातीत निर्दयताका तथा हिंसापूर्ण व्यवहार करते रहते हैं।) यदि ऐसी बात होती तो संसारसे मानव जातिका ही लोप हो गया होता। समस्त आलोचनामें यदि इस सत्यका ध्यान न रक्खा जाय तो भूल होगी। पर साथ ही इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि उन लोगोंका कहना भी रुपयेमें बारह आने ठीक है।

हेड्डन (Haddon) साहबने अपने Head--Hunters नामक ग्रन्थमें जो बहुत जोर देकर यह कहा है कि, By no means down trodden or ill used.(अर्थात्, उनकी स्त्रियाँ न तो किसी प्रकार पद-दलित ही होती हैं और न उनका कोई दुरुपयोग हो होता है।) सो उनकी यह बात भी नितान्त अश्रद्धेय है। यद्यपि कुछ असभ्य जातियोंमें ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं, जो उनकी बातके अनुकूल हैं। उदाहरणार्थ भारतवर्षकी खसिया जातिकी स्त्रियाँ जब नाराज होती हैं, तब अपने पतिको घरसे निकाल देती हैं। निकारागुआ और टाहिटीकी स्त्रियाँ भी अपने पतिको घरसे निकालकर दूसरे विवाह कर लेती हैं। जब आपाच जातिके लोग लड़ाईमें हारकर लौटते हैं, तब उनमें स्त्रियाँ अपने पतिको घरमें नहीं घुसने देतीं। डायेक युवक और ओमेजनके व्याधे लोग यदि युद्धमें वीरता नहीं दिखला सकते, तो अपना विवाह नहीं कर सकते। नर-मांसाहारी कारिब जातिके लोग पुरुषोंको तो मारकर खा सकते हैं, परन्तु स्त्रियोंका मांस वे लोग नहीं खाते। यदि अरब देशके शेख स्त्रियोंके सामने खड़े होकर तेज चाबुकोंका आघात हँसते हुए नहीं सह सकते, तो वे युवतियोंके हृदयपर अधिकार नहीं कर

सकते। इसके सिवा और भी कई जातियोंमें, उदाहरणार्थ सुमात्रा द्वीपके बाठा प्रदेशमें, आफ्रिकाके सुवर्ण उपकूलके हब्शियोंमें, अमेरिकाके पेरू देशकी असभ्य जातियोंमें और दूसरी कई आदिम जातियोंमें और हम समझते हैं कि कदाचित् हमारे देशके टोडा लोगोंमें भी, सम्पत्तिका उत्तराधिकार रमणीकी ओरसे ही होता है, पुरुषकी ओरसे नहीं होता।

इन सब उदाहरणोंके होते हुए भी यह बात हजारों प्रकारके उदाहरण देकर प्रमाणित की जा सकती है कि स्त्रियोंका सदासे ही पीड़न होता चला आ रहा है। हम इससे पहले कई प्रकारसे कह चुके हैं कि स्त्रियोंकी गणना सम्पत्तिके ही अन्तर्गत होती थी और इसीलिए सम्पत्तिका उत्तराधिकार भी नारीकी ओरसे ही आया था। एक एक स्त्रीका चार चार और पाँच पाँच बार भी बँटवारा हो जाया करता था और इसीलिए यह निश्चय करनेका कोई उपाय नहीं रह जाता था कि उसके गर्भसे उत्पन्न सन्तान किस वंशकी है। यही कारण था कि किसी पुरुषके मर जानेपर स्वयं उसकी स्त्रीकी सन्तानको उसकी सम्पत्ति नहीं मिलती थी, बल्कि उसकी बहनकी सन्तानको मिलती थी। यह बात नहीं है कि उस बहनका भी बँटवारा न होता हो, लेकिन उसका हजार बँटवारा हो जानेपर भी वे लोग निस्सन्देह रूपसे जानते थे कि वह कमसे कम हमारे ही वंशकी है और उसके गर्भसे जो सन्तान होगी, वह भी बहुत कुछ हमारे ही वंशकी होगी। इसीलिए सम्पत्ति भानजेको मिलती थी, पुत्रको नहीं मिलती थी। सम्पत्ति चाहे जिसे मिले, परन्तु उत्तराधिकार निश्चित करते थे पुरुष ही: नारियोंका उसमें कुछ भी हाथ नहीं होता था। मनुष्यकी बुद्धिके तारतम्यके हिसाबसे बकरीका गला चाहे दाहिनी ओरसे रेतकर काटा जाय और चाहे बाईं ओरसे रेतकर काटा जाय, उससे भलाई-बुराई निर्दिष्ट नहीं होती। हम समझते हैं कि शायद इसीलिए टायलर साहब सुवर्ण उपकूलके हब्शियोंके सम्बन्धमें कह गये हैं कि ऊपरसे देखनेमें उनकी स्त्रियोंकी अवस्था Officially superior या नियमोंके विचारसे भले ही श्रेष्ठतर जान पड़ती हो, परन्तु वह practically very inferior अर्थात् कार्य रूपमें बहुत ही निम्न-कोटिकी थी और हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि यह बात प्रायः सभी जातियोंके सम्बन्धमें ठीक बैठती है।

काले Crawley साहबने अभी हालमें अपने Mystic Rose नामक

ग्रन्थमें स्त्रियोंकी उन्नत अवस्थाका उल्लेख करते हुए पापुअन लोगोंका उदाहरण दिया है। तर्क उपस्थित किया है कि यद्यपि इस बारेमें ये लोग बहुत बदनाम हैं कि स्त्रियोंको बहुत कष्ट देते हैं, परन्तु फिर भी इन लोगोंमें यह प्रथा अवश्य है कि नारी ही अपना स्वामी मनोनीत करती है और विवाहका प्रस्ताव भी वही कर सकती है—पुरुष किसी स्त्रीसे विवाहका प्रस्ताव नहीं कर सकते, और इसी प्रथाने उनकी अवस्था बहुत उन्नत कर रक्खी है। यद्यपि यह प्रथा ऊपरसे देखने-सुननेमें कुछ बुरी नहीं जान पड़ती, परन्तु, फिर भी इसके विपक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। पहली बात तो यही है कि इस बातका कोई संगत हेतु नहीं हो सकता कि स्वयं ही अपना पति मनोनीति करती हैं, और इसलिए पुरुषोंके द्वारा वे पीड़ित नहीं होतीं। जिन लोगोंमें दाम्पत्य प्रेमकी कोई धारणा ही नहीं है और जो बात बातमें स्त्रीकी हत्या कर डालते हैं, उन लोगोंमें यदि स्त्रियोंके हाथमें यह थोड़ी-सी क्षमता हो भी, तो हमारी समझमें नहीं आता कि इस क्षमतासे उनका कोई विशेष कार्य निकलता होगा।

रेवरेंड सूटर साहब कहते हैं कि आफ्रिकाके कांगो और उगांडा प्रदेशमें नारियोंका बहुत कुछ मान और मर्यादा है। वास्तवमें उन देशोंमें रमणियाँ रानी तक हो जाती हैं। और कप्तान स्पेक Captain Speke अपने Discovery of the source of the Nile (नील नदीके उद्गमका अन्वेषण) नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि कांगो और उगांडा देशोंके वाहुमा जातिके बड़े आदमी बात बातमें प्रायः बिना किसी अपराधके ही स्त्रीकी हत्या कर डालते हैं; और इस प्रकारकी घटनाओंके चित्र तक वे स्वयं अपने हाथोंसे अंकित करके उक्त ग्रन्थोंमें छोड़ गये हैं। ग्रन्थमें उन्होंने यह भी लिखा है कि जिस समय स्त्रियोंके हाथोंमें रस्सी बाँधकर उन्हें वध्य भूमिकी ओर घसीटते हुए ले जाते हैं, उस समय स्त्रियाँ खूब जोर जोरसे रोती हुई चलती हैं। उनका वह रोना-धोना सुनकर बड़े बड़े पिशाचोंके मनमें भी दया उत्पन्न हो आती है परन्तु उन देशोंके पुरुष उनके रोने-धोनेकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देते। जब ग्रन्थकारके तम्बूके पासवाले रास्तेसे प्रायः स्त्रियोंके रोने और इस प्रकार चिल्लानेके शब्द सुनाई पड़ते थे, "हे मियांगी! हे बाक्का!" (अर्थात् हे मेरे स्वामी! हे मेरे राजा!) तब उनके 'स्वामी' और 'राजा' शायद मजेमें मुस्कराते थे। उस देशके राजा किनेराकी मृत्युके

तुरन्त बादकी जिन घटनाओंका कप्तान स्पेकने आँखों-देखा वर्णन किया है, उसे पढ़नेसे ऐसा जान पड़ता है कि बच्चोंकी दृष्टिमें मिट्टीके खिलौनोंका जो मूल्य होता है, कदाचित् वहाँके पुरुषोंकी दृष्टिमें स्त्रियोंका उतना मूल्य भी नहीं होता। एक स्थानपर लिखा है कि छोटे राजाने मृत पिताकी सभी कन्याओंके साथ विवाह कर लिया और इसके सात ही दिन बाद उनमेंसे तीनको ठीक तरहसे डांगिग या अभिवादन न करनेके अपराधमें जीते-जी जला दिया!

बहुतसे पर्यटक पृथ्वीके आदिम निवासियोंके सम्बन्धमें लिख गये हैं कि अधिकांश असभ्य जातियाँ यह बात बिलकुल नहीं जानतीं कि पति और स्त्रीमें प्रेम नामकी कोई चीज होती है। मन्टेरोने कहा है—"The Negro knows not love, affection or jealousy, they have no words or expressions in their language indicative of affection or love." (अर्थात्, हब्शी लोग प्रेम अनुराग या ईर्ष्याका नाम भी नहीं जानते और उनकी भाषामें अनुराग या प्रेमका सूचक कोई शब्द ही नहीं है।) सर जान लबकने इसी देशके हटेनटट लोगोंके सम्बन्धमें कहा है, "are so cold and indifferent to one another that you would think there was no such thing as love between them." (अर्थात्, वे लोग एक दूसरेसे इतने अधिक उदासीन और निर्मम रहते हैं कि उन्हें देखकर आप यही समझेंगे कि उनमें प्रेम सरीखी कोई बात ही नहीं है।) काफिरोंके सम्बन्धमें कहा गया है "No feeling of love in marriage." (अर्थात्, विवाहमें प्रेमकी कोई भावना ही नहीं होती।) और जारिब लोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है, "Affection between man and wife out of the question." (अर्थात्, उनमें पति और पत्नीमें अनुरागका तो कहीं कोई जिक्र ही नहीं होता।) और फिर यह बात भी नहीं है कि इन लोगोंमें नारीके पति-प्रेम या स्वामी-सेवाकी बात न सुनाई देती हो। हो सकता है कि पुरुषोंकी जबरदस्तीके कारण ही अत्यन्त निष्ठुर डाहोमान, मालगासी, फीजियन, छीपा और ब्रेचू-आना आदि सभी जातियोंके घरोंमें पतिव्रता स्त्रियाँ पाई जाती हों। हम यह बात पहले ही बतला चुके हैं कि डाहोमी और फीजी द्वीपमें पतिकी मृत्युके उपरान्त विधवाएँ आत्महत्या कर लेती हैं। अमेरिकाकी मंडान जातिकी विधवाएँ अपने मृत पतियोंके कपाल संग्रह करके और उनकी माला बनाकर गलेमें पहनती हैं, उस मुंडको अपने साथ बिछोनेपर रखकर रातको सोती हैं,

उसे स्नान कराती है, भोजन कराती हैं, जाड़ेके दिनोंमें उसे ओढ़नेके नीचे दबाकर रखती हैं और यहाँ तककी गीत गाकर उसे सुलाती भी हैं। और पुरुष लोग अपने जीवन-कालमें उनके साथ क्या क्या करतूतें नहीं कर जाते। लेकिन हम यह भी नहीं कहते कि सब जगह पुरुष लोग बराबर अत्याचार ही करते रहते हैं और उसके बदलेमें स्त्रियाँ केवल प्रेम और सेवा ही करती रहती हैं। यदि हम ऐसा कहें तो मानो हम मानव-स्वभावके बिलकुल विरुद्ध बात कहेंगे। लेकिन हाँ, यदि कहीं कठोर अत्याचार और अविचारके बदलेमें भी स्नेह और प्रेम हो सकता है, तो वह स्त्रियोंमें ही हो सकता है। और यदि इसके दृष्टान्त ढूँढ़े जायँ तो वे निर्मम तथा असभ्य मानव-समाजमें भी दुर्लभ नहीं होंगे, और इसीलिए हमने यहाँ दो एक दृष्टान्त दे दिये हैं।

हमने अनेक प्रकारसे यह बतलानेकी चेष्टा की है कि नारीका यह मूल्य पुरुष कभी स्वीकार नहीं करना चाहता और नहीं करता। अवश्य ही इसके प्रतिकूल भी कुछ कहा जा सकता है, लेकिन इतना होनेपर भी यह बात बिलकुल ठीक है कि यदि हम उन सब बातोंको अंगीकार कर लें तो भी इस प्रबन्धका मूल उद्देश्य तिल मात्र भी विचलित न होगा।

जो हो, अब तक हम जो कुछ कह आये हैं, वह यही है कि प्रायः किसी देशमें भी पुरुषने नारीका यथार्थ मूल्य नहीं दिया है और वह सदा नारीको अनेक प्रकारके कष्ट ही पहुँचाता आया है। वह नारीपर अत्याचार करता आया है, इसे अस्वीकृत करनेका तो कोई मार्ग नहीं है। लेकिन तर्क इस बातपर अवश्य हो सकता है कि वह नारीको न्यायोचित मूल्यसे सदा वंचित ही करता आ रहा है। कारण जब तक पहले नारीका वास्तविक मूल्य निश्चित न किया जाय, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उसने अपना यथार्थ मूल्य पाया है या नहीं। पुरुष यह बात भी कह सकता है कि जिस देशमें नारी जो मूल्य पाती आई है, हो सकता है कि उस देशमें वही उसका प्राप्य मूल्य हो। इसलिए इस बातकी आलोचना कर लेना आवश्यक है।

यह आलोचना करते समय सबसे पहले नर और नारीके सम्बन्धका ही विचार करना पड़ता है। नर और नारीमें मुख्यतः चार सम्बन्ध होते हैं। ये चारों सम्बन्ध हैं—पत्नी, बहन, कन्या और माता; और अब हम क्रमशः इन्हीं सम्बन्धोंकी आलोचना करते हैं। जान एफ. मॅलेनन (John F. M' Lennan) ने अनेक देशोंके उदाहरण देकर अपने Primitive Marriage

(आरम्भिक कालके विवाह) नामक ग्रन्थमें यह बतलाया है कि आदिम कालके लोग किस प्रकार पत्नी प्राप्त करते थे। जिस समय मनुष्य पशुओंके समान था, उस समय किस प्रकार पत्नी प्राप्त करता था, इसका कई बार हम भी इस प्रबन्धके आरम्भमें संकेत कर चुके हैं। जो सबल होता था, वह दुर्बलसे स्त्री छीन लेता था: और जब उसका शौक पूरा हो जाता था, तब उसे त्याग देता था। अपने शौकके आगे और अपने स्त्री-लाभके प्रयोजनके आगे वह किसी बातका विचार नहीं करता था और कोई भी सम्बन्ध उसके लिए बाधक नहीं हो सकता था। म'लेनन (M'Lennan) ने एक स्थानपर कहा है—"Men must originally have been free of any prejudice against marriage between relations." (अर्थात्, अवश्य ही आदिम कालमें विवाहके समय किसी तरहके रिश्ते-नातेका कोई ध्यान न रखता होगा।) और उसकी यह बात बहुत ही ठीक है। उन दिनों Primitive instinct (मौलिक नैसर्गिक बुद्धि या सहज-ज्ञान) नामकी मानों कोई चीज़ ही नहीं थी।

यह बात नहीं है कि केवल असभ्य आदिम मनुष्य ही विवाहके लिए माता बहन लड़की आदिका कुछ विचार नहीं करते थे: उनमें तो इस तरहके अनेक उदाहरण पाये ही जाते हैं, परन्तु अर्द्ध-सभ्य और सुसभ्य लोगोंमें भी इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। Heredity या वंशानुक्रमके सम्बन्धमें जिन लोगोंने कुछ आलोचना की है, वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि अत्यन्त सभ्य समाजमें भी जो बीच बीचमें अनेक बीभत्स और गुप्त कलंककी बातें सुनी जाती हैं, वे सब वही आदिम मनुष्यके खेल हैं।

हम पहले ही यह बात कह चुके हैं कि असभ्य छिपिवेन लोग अपनी माताके साथ विवाह कर लेते हैं। अर्द्ध-सभ्य आफ्रिकाके गेबून (Gaboon) देशकी रानीके सम्बन्धकी अभी थोड़े ही दिनोंकी बात है कि जब उसके पतिकी मृत्यु हो गई और उसके हाथसे राज्य निकल जानेकी आशंका होने लगी, तब उसने अपने बड़े लड़केके साथ विवाह करके सिंहासनपर अपना दावा कायम रक्खा। सुसभ्य प्राचीन मिस्रके फराओ (राजा) अपनी सगी बहनके साथ विवाह किया करते थे। सभ्य पेरू प्रदेशके रोका इंकाके वंशधर छठे अथवा सातवें इंकाने अपना आभिजात्य बनाये रखनेके लिए अपने दूसरे पुत्रके साथ अपनी सबसे छोटी लड़कीका विवाह करके

उसे सिंहासनपर बैठाया था। वशिष्ठ ऋषिने भी अपनी बहन अरुन्धतीके साथ विवाह किया था। लंका द्वीपके असभ्य भेद्दा लोग अपनी छोटी बहनके साथ विवाह करना सबसे अधिक गौरवकी बात समझते हैं। उस अवस्थामें वे अपने समाजमें कुलीन समझे जाते हैं और उनका सम्मान बढ़ता है। अपनी सौतेली बहन और विधवा भौजाईके साथ विवाह तो प्रायः सभी देशोंमें प्रचलित है। और इनमेंसे कोई भी, एक असभ्य भेद्दा लोगोंको छोड़कर, केवल एक स्त्री पाकर सन्तुष्ट नहीं होता: सभी लोग बहु-विवाह करते हैं। अर्थात् मनुष्य अपने घरकी भी दूसरोंको नहीं देता और दूसरोंकी भी छीन लाता है।

अब यहाँ यदि यह समझा जाय कि ऊपर जो बातें कही गई हैं वे सब केवल उक्त सब जातियों और देशोंके सम्बन्धमें ही ठीक हैं, अन्यान्य देशोंके सम्बन्धमें ठीक नहीं हैं, तो यह भूल है। सभी देशों और सभी जातियोंके सम्बन्धमें ये सब बातें ठीक उतरती हैं। अन्तर यही है कि कहीं तो ये प्रथाएँ लुप्त हो गई हैं और कहीं अभी तक प्रचलित हैं। हमारे देशमें आजकल बड़ा भाई अपने छोटे भाईकी स्त्रीकी छाया तक स्पर्श नहीं कर सकता: परन्तु इसी देशमें पाँचो पाण्डव-भाइयोंने एक द्रौपदीके साथ विवाह किया था। और ठीक याद तो नहीं आता, लेकिन कुछ कुछ ऐसा याद पड़ता है कि सातों दीर्घतमा ऋषियोंने भी, जो आपसमें भी भाई ही थे, एक ही स्त्री लेकर अपनी ऋषि-यात्राका निर्वाह किया था। और इसीको महाभारतके आदि पर्वमें सनातन प्रथा कहा गया है। इसके सिवाय जिसे असभ्योंका marriage by capture किसी स्त्रीको जबरदस्ती छीनकर उसके साथ विवाह करना कहते हैं, उसका इस सभ्य भारत भूमिमें भी बहुत अधिक प्रचलन था और इसके दृष्टान्तोंकी भी कमी नहीं हैं।

नारियोंके सम्बन्धमें घरमें भी और बाहर भी बहुत कुछ खींचा-तानी और छीना-झपटी होती रहती है, और फिर दो ही दिन बाद उन नारियोंका कोई मूल्य नहीं रह जाता: यही बात समझानेके लिए हमने नारियोंकी आदिम अवस्थाकी ओर संकेत किया है। सन् १८७० ई० तक एबीसीनियामें यह प्रथा प्रचलित थी कि जब वहाँके लोगोंको प्राण-दण्ड मिलता था, तब वे लोग अपने सरदारको अपने सिरके बदलेमें अपनी युवती कन्या अथवा स्त्री दे दिया करते थे, और यह मूल्यवान् उपहार दो दिन बाद सरदार जिसे चाहता

था, उसे प्रदान कर दिया करता था। कप्तान स्पेक (Captain Speke) ने उक्त देशके एक राजाके सम्बन्धमें एक दिनकी घटनाका इस प्रकार वर्णन किया है, "Next the whole party (King & Queens) took a walk winding through the trees and picking fruit, enjoying themselves amazingly, till, by some unlucky chance one of the Royal wives, a most charming creature and truly one of the best of the lot plucked a fruit and offered it to the King, thinking doubtless to please him greatly, but the, like a mad man flew into a towering passion, said it was the first a woman ever had the impudence to offer him anything and ordered the pages to seize, bind and lead her off to execution." (अर्थात्, इसके बाद सब लोग—राजा और उसकी सब रानियाँ-वृक्षोंके बीच इधर-उधर घूमने लगे, फल तोड़ने लगे और खूब आनन्द करने लगे। अभाग्यवश राजाकी एक रानीने, जो परम सुन्दरी थी और वस्तुतः सब रानियोंमें अधिक रूपवती थी, एक फल तोड़कर राजाको देना चाहा। अवश्य ही वह यह समझती थी कि इससे राजा मुझपर बहुत प्रसन्न होंगे लेकिन राजा इसपर पागलोंकी तरह आपेसे बाहर होकर खड़ा हो गया और कहने लगा कि यह पहला ही अवसर है जब कि किसी स्त्रीने मुझे कोई चीज भेंट करनेकी गुस्ताखी की है: और इसलिए अपने साथी नौकरोंको उसने आज्ञा दी कि इसे पकड़कर बांध लो और ले जाकर फाँसीपर लटका दो।) इसके बाद स्पेकने लिखा है—"It was too much for my English blood to stand, and of course I ran imminent risk of losing my own in trying to thwart the capricious tyran but I saved the woman's life." (अर्थात्, मेरे अंग्रेजी ख़ूनके लिए यह बात बरदाश्त करना बहुत मुश्किल था, इसलिए मैंने खुद अपनी जान खतरेमें डालकर उस झक्की अत्याचारीका उद्देश्य विफल करनेका प्रयत्न किया और किसी तरह उस स्त्रीकी जान बचाई।)

नारियोंके सम्बन्धमें पुरुषोंकी जो यह लड़क-खेलवाड़, जो स्वार्थपरता, यह जो पाशव-वृत्ति और एकान्त उन्मत्तता है, वह केवल नारी जातिको ही अपमानित और अवनमित करके शान्ति नहीं हुई है, बल्कि उसने पुरुषोंको, समाजको और समस्त मातृभूमिको एक साथ खींचकर नीचे ला गिराया है। इस प्रबन्धमें इतना स्थान नहीं है कि विभिन्न देशोंकी नजीरें देखकर यह बात

सिद्ध की जाय, इसलिए हम केवल कप्तान स्पेककी एक और बात बतलाकर ही इस प्रकरणका अन्त करेंगे। उन्होंने कहा है कि आफ्रिकाकी जो इतनी अधिक दुर्दशा है, उसका रुपयेमें बारह आने कारण पुरुषोंकी यही उच्छृंखलता है। वहाँ किसी सरदार या क्षमतापन्न व्यक्तिकी मृत्यु होते ही एक युद्ध या लड़ाई-झगड़ा या भारी उथल-पुथल अनिवार्य हो जाती है। वहाँ यदि इस बातका निर्णय करना हो कि कौन किसका सौतेला भाई नहीं है या किसकी सम्पत्तिपर किसका अधिकार नहीं है, तो इसके लिए शारीरिक बल और भालेके फलके सिवा निर्णय करनेका और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

एक बात और है। इन्हीं कप्तान साहबने जब एक बार अपने एक बाविम्बी हब्शी नौकरके मुँहसे सुना कि वह मनुष्योंका मांस खाता है और मनुष्योंका मांस उसे बहुत अच्छा लगता है तब उन्होंने पूछा, "भाई, आदमीका इतना अधिक मांस तुम्हें मिलता कहाँ है? क्या तुम लोग अपने ही आदमियोंको मार मारकर उनका मांस खा जाते हो?" इसपर उस आदमीने उत्तर दिया, "नहीं, हम लोग अपने आदमियोंको नहीं मारते। आस-पासके गाँवोंसे खरीद लाते हैं।" कप्तानने पूछा, "आखिर इसका मतलब?" उसने कहा, "जिन लड़के लड़कियोंका बाप नहीं होता उन्हें खानेको नहीं मिलता और वे बीमार पड़ जाते हैं। उस समय उनकी माता एक बकरी मिल जानेपर ही उन्हें दे देती है और हम लोग उन बच्चोंको अपने घर लाकर मार डालते हैं और उनका मांस खा जाते हैं।" सुसभ्य देशोंमें जिस प्रकार पिता दूसरा विवाह कर लेने पर अपनी दूसरी स्त्रीके बाल-बच्चोंकी तुलनामें अपनी पहली स्त्रीके बाल-बच्चोंके प्रति प्रायः निर्दय हो जाता है, जान पड़ता है कि ठीक उसी प्रकार उक्त देशकी माता भी पहले पतिके लड़कोंके प्रति निर्दय हो जाती है और असभ्य होनेके कारण शायद कुछ और आगे बढ़ जाती है, और उसका यह बढ़ जाना, हम समझते हैं कि, स्वाभाविक भी है।

अंडमन द्वीपके असभ्योंमें एक प्रथा है। जब तक शिशुके दाँत नहीं निकलते, तब तक तो पति और स्त्री दोनों एक साथ रहते हैं पर जब उसके दाँत निकल आते हैं, तब दोनों अपना अपना रास्ता देख लेते हैं। पुरुष कोई और स्त्री ढूँढ़ लेता है और स्त्री कोई दूसरा पुरुष तलाश कर लेती है। उस समय स्त्री प्रायः अपने उस दाँत निकलनेवाले शिशुको किसी जलाशयके किनारे फेंक देती है और अपनी दूसरी गृहस्थी सँभालनेके लिए चली जाती

है। इसी लिए डाक्टर फ्रान्सिस (Francis Day) ने रिपोर्ट की थी कि अंडमन द्वीपके निवासी बहुत जल्दी जल्दी मरते और खतम होते जा रहे हैं। बहुत कुछ ढूढ़ने पर भी उन्हें एक भी ऐसी माता नहीं मिली थी जिसकी एक साथ तीन सन्तानें जीवित हों।

अमेरिकाकी कुचिल जातिकी माताकी सन्तान जब बीमार हो जाती है, तब वह उसे जाकर जंगलमें फेंक आती है। हरबर्ट स्पेन्सरने अपने Savage Life and Scenes in Austrlia and New Zealand (by G. F. Angas) (अर्थात्, आस्ट्रेलिया तथा न्यू जीलैंडका जंगली जीवन और दृश्य) में इस बातका उल्लेख करके कहा है कि अंगस साहबकी इस बातपर विश्वास करने जी नहीं चाहता कि सचमुच आस्ट्रेलियाके असभ्य लोग अपने जीते हुए लड़कों और लड़कियोंको मगर आदि पकड़नेके लिए अपनी बन्सीकी नोकोंमें चारेकी जगह लगा देते हैं और उनकी चरबीसे मछलियाँ पकड़ते हैं। लेकिन उनकी बातपर अविश्वास करनेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि अनुसन्धान करने पर पता चलता है कि चाहे कोई देश हो और चाहे कोई जाति हो, जब समाजमें नारीका स्थान बहुत नीचा हो जाता है तब उसके साथ ही साथ शिशुओंका स्थान भी नीचे उतर आता है। यह केवल मनुष्योंके नीचेवाले स्तरकी ही बात नहीं है। अपेक्षाकृत उन्नत स्तरकी ओर देखने पर भी पता चलता है कि जहाँ स्त्री उपेक्षाकी चीज होती है, वहाँ जातिके मेरु-दंडस्वरूप शिशु भी उपेक्षा और अवहेलनाकी वस्तु हो जाते हैं। उदाहरण देकर इस बातकी सत्यता प्रमाणित करनेका प्रयत्न करना तो मानों विडम्बना मात्र है। उस जातिका भविष्यत् उत्तरोत्तर अन्धकारपूर्ण ही होता जाता है। लेकिन जो लोग यह समझते हैं कि इसका एकमात्र कारण नर और नारीका शिथिल बन्धन ही है, वे भूल करते हैं। इसका सबसे प्रधान कारण यही है कि नारीकी उपेक्षा की जाती है और वह क्रीड़ाकी सामग्री समझी जाती है।

कुछ ठीक समझमें नहीं आता कि हरबर्ट स्पेन्सरने अपने Sociology (समाजशास्त्र) नामक ग्रन्थमें मनुष्यके Strong emotion तीव्र मनोभावोंकी दुहाई देकर किस प्रकार इस विषयकी मीमांसा करनी चाही है। कहा गया है कि गुस्सेकी हालतमें "will slay a child for letting fall something it was carrying" (अर्थात्, यदि बालक कोई चीज लिये जाता हो और उसके हाथसे वह चीज गिर पड़े, तो वे उसे मार डालेंगे)। उनका ऐसा

करना तीव्र मनोविकारका परिणाम माना जा सकता है। परन्तु उनके सम्बन्धमें यह भी कहा है कि "Kill their children *wityout remorse* on various occasion." (अर्थात्, वे भिन्न भिन्न अवसरोंपर बिना किसी प्रकारके परिताप या दुःखके अपने बच्चोंकी हत्या कर डालते हैं।) और मछलियाँ पकड़नेके लिए अपने बच्चोंको मारकर और धीरे धीरे उनकी चरबी निकालकर वह चरबी मछली पकड़नेकी बन्सीके सिरेपर चारेकी जगह लगाते हैं अथवा desert sick ehildren अर्थात् रोगी बच्चोंको जंगलमें फेंक आते हैं। ये सब बातें किस प्रकार lunotion या मनोविकारोंका परिणाम हो सकती हैं और यदि मान लिया जाय कि ये सब बातें मनोविकारोंका ही परिणाम हैं तो भी हमारी बात अस्वीकृत नहीं हो सकती। आदिम मनुष्योंमें जो कुछ दोष होते हैं, वे तो होते ही हैं: और यह बात भी है कि नर और नारीके बन्धन प्रायः सभी जगह शिथिल होते हैं, लेकिन इतना सब कुछ होनेपर भी यदि पुरुष स्त्रियोंकी अवस्था निम्नतल पर न ले आवें, तो फिर उक्त बातोंसे ही उसकी सामाजिक अवस्था उत्तरोत्तर हीन नहीं हो सकती और न वह दिन-पर दिन संसारसे अपसृत ही हो सकता है।

हम दृष्टान्तस्वरूप टाहिटी लोगोंकी बात कहते हैं। कप्तान कुकने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है कि इन लोगोंका दाम्पत्य बन्धन अत्यन्त कदर्य very low, very degraded (बहुत ही निम्न कोटिका और गिरा हुआ) होता है। यहाँ तक कि जो स्त्री सुन्दरी होती है, उसका मन किसी तरह एक पतिसे भरता ही नही। यदि मैकेकी अवस्था ससुरालकी अवस्थासे अच्छी हो तो स्त्री "As a right demand and obtain more husbands." (अर्थात्, अपने हकके तौरपर कह सकती है कि मुझे अधिक पति मिले और वह अधिक पति प्राप्त भी कर लेती है।) कप्तान कुकके बाद जितने यात्री वहाँ गये हैं, उन्होंने भी यही कहा है कि ये सब बातें बिलकुल ठीक हैं। लेकिन इन सब बातोंके होते हुए भी उस देशके पुरुष स्त्रियोंको श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। हम समझते हैं कि शायद इसी लिए इस देशमें शिशुओं और सन्तानोंका बहुत ही यत्नपूर्वक पालन-पोषण होता है: और उस जमानेमें भी सब लोग यह बात एक-वाक्य होकर स्वीकृत कर गये हैं कि इन लोगोंके समान शान्त, सुशील, अतिथि-सेवी और सत् अनेक सभ्य समाजोंमें भी नहीं मिलते। चोरी डकैती तो ये लोग जानते ही नहीं हैं। हम

यह नहीं कहते कि उनकी सामाजिक अवस्था अनुकरणीय है, लेकिन उन लोगोंने कभी नारियोंका असम्मान नहीं किया और न अन्यान्य असभ्य जातियोकी तरह नारियोंका स्थान खींच कर नीचे ही गिराया। इसी लिए सन् १९०८ में सी० एल० रेग (C. L. Wragge) ने अपने The Romance of the South Seas नामक ग्रन्थमें टाहिटी द्वीपके निवासियोंके सम्बन्धमें उच्च स्वरसे कहा था--"And what are the duties of women? To look after the house and mind the children; to be good wives, good mothers, to leave politics alone and darn the clothes. Tahitian woman, in *woman's sphere* are superior by far, in my opinion, to their sieters in the Bois, and few Belgraviennes can give them points." अर्थात्, स्त्रियोंका कर्त्तव्य क्या है? घरकी देख-भाल करना, बाल-बच्चोंका ध्यान रखना, उत्तम पत्नी और उत्तम माता बनना राजनीतिसे दूर रहना और कपड़े रफू करना। मेरी सम्मतिमें टाहिटी द्वीपकी स्त्रियाँ स्वयं स्त्रियोंके क्षेत्रमें बॉयस (Bois) में रहनेवाली अपनी बहनोंसे कहीं बढ़कर अच्छी हैं और बेलग्रविनी स्त्रियोंमें भी बहुत ही थोड़ी ऐसी होंगी जो उनका मुकाबला कर सकें।)

सीलोन या लंकाके असभ्य भेद्दा लोग जो नारी जातिके प्रति बहुत अधिक श्रद्धा रखते और उसका बहुत सम्मान करते हैं, प्राणान्त हो जानेपर भी कभी एक स्त्रीके वर्त्तमान रहते हुए दूसरी स्त्री ग्रहण नहीं करते और न कभी अपनी स्त्रीका परित्याग ही करते हैं। उनके सम्बन्धमें जर्मन विज्ञानाचार्य हेकेलने कहा है कि सत्यता और न्यायपरतामें ये लोग युरोपकी अनेक सभ्य जातियोंको शिक्षा दे सकते हैं। इन लोगोंके अपत्य-स्नेहके समान मधुर वस्तु संसारमें दुर्लभ है। डायक और टोडा लोगोंके सम्बन्धमें भी यही बात कही जाती है। चरित्रके सौन्दर्यके सम्बन्धमें तिब्बतकी स्त्रियोंकी बहुत सुख्याति है। वे केवल कई भाइयोंको ही एक साथ पतिके रूपमें ग्रहण नहीं करती, बल्कि यदि उनके मनमें करुणा उत्पन्न हो जाय तो वे पास-पड़ोसके लोगोंका आवेदन-निवेदन भी अग्राह्य नहीं करतीं। लेकिन फिर भी उस देशके पुरुष अपनी नारियोंका बहुत अधिक सम्मान करते हैं। हम समझते हैं कि शायद इसीलिए राजा राममोहन राय इन तिब्बती स्त्रियोंके सम्बन्धमें लिख गये हैं, "विपत्तिके दिनोंमें तिब्बती रमणीकी दयासे ही मेरे प्राण बचे थे और आज चालीस बरसोंके बाद भी उन रमणियोंका स्मरण होते ही आँखोंमें आँसू भर आते हैं।"

इन्हीं स्त्रियोंके कारण वे जन्म-भर नारी जातिके प्रति श्रद्धा रखते रहे और उसका सम्मान करते रहे। यह बात स्वयं उन्होंने अपने मुँहसे स्वीकृत की है।

यहाँ हम अपने पाठकोंसे एक बहुत ही विनीत निवेदन करते हैं। हमारे इन सब दृष्टान्तोंसे कहीं आप लोग भ्रममें पड़कर यह न समझ बैठें कि हम असच्चरित्रताके गुण गा रहे हैं। हम तो केवल यही बात समझाकर कहना चाहते हैं कि ऐसी अवस्थामें भी नारीका सम्मान करके, उसका एक मूल्य देकर पुरुष ठगा नहीं गया है। वस्तुतः स्त्रियोंका एक सच्चा और स्वाभाविक मूल्य है और इसीलिए ऐसी अवस्थामें भी पुरुष जीतनेके सिवा हारा नहीं है।

अब हम इसका एक विपरीत दृष्टान्त लेकर देखते हैं। वह दृष्टान्त है फीजी द्वीपकी स्त्रियाँका। इस बातमें सन्देह ही है कि उनके समान पतिव्रता स्त्रियाँ और कहीं होती हैं या नहीं। हम पहले ही कह चुके हैं कि वे अप पतिकी कब्रपर अपनी इच्छासे और बिना किसी प्रकारके बन्धनके प्राण दे देती हैं। लेकिन वहाँके पुरुष केवल बहुत विवाह ही नहीं करते, बल्कि बात बातपर स्त्रियोंकी हत्या कर डालते हैं। वहाँ स्त्रियोंका स्थान घरमें पाले हुए पशुओंके समान है। बल्कि कहना चाहिए कि उससे भी और गया बीता है। वहाँ माताएँ प्रार्थना करती हैं कि हमारी सन्तान चोर, डाकू और खूनी हो और पुत्र प्रायः अपनी माताकी हत्या करके मानों अपनी शिक्षा आरम्भ करते हैं। पिता सुनकर हँसते हैं और कहते हैं कि मेरा लड़का वीर होगा। लेकिन स्त्रियोंके निष्ठुर अन्तःकरणका उल्लेख करते हुए अनेक यात्रियोंने कहा है कि जब पुरुष किसीको लड़ाईमें कैद करके अपने घर लाते हैं, तब उन्हें मारकर खानेसे पहले स्त्रियोंके आमोदके लिए अन्तःपुरमें भेज देते हैं। स्त्रियोंका सबसे बड़ा आमोद यह होता है कि वे उस कैदीके हाथ-पैर बाँधकर किसी तेज चीजसे उसकी आँखें निकाल लेती हैं। सब स्त्रियाँ उस अभागेको चारों तरफसे घेरकर खड़ी हो जाती हैं और उनमेंसे कोई उसकी आँखें निकालने लगती है, कोई चाकूसे उसका पेट फाड़कर उसकी आँतें निकालने लगतीं हैं और कोई पत्थरसे उसके दाँत तोड़ने लगती हैं। वह जितना ही रोता और चिल्लाता है, उनको उतना ही अधिक मजा आता है। बस उस देशकी स्त्रियाँ इसी तरहकी होती हैं, लेकिन इतना होनेपर भी उनमें जितनी पति-भक्ति और सतीत्व होता है, उतना असभ्योंमें तो क्या, अनेक सुसभ्योंमें भी मिलना कठिन है। तो फिर आखिर उनमें ये सब बातें क्यों होती हैं?

सतीत्वमें जिनकी बराबरी और स्त्रियाँ नहीं कर सकती, उन नारियोंका हृदय किस दोषसे और किस पापके कारण इस तरहका पत्थरका हो गया है ?

नारीके सम्बन्धमें पुरुषकी सहृदयता और न्याय-परताका परिचय देते हुए हमने बहुत-सी नजीरें दे डाली हैं और बहुत-सी बातें कह डाली हैं। अब हम इस सम्बन्धकी अधिक बातें नहीं कहना चाहते। क्योंकि यदि इतने उदाहरणों और इतनी बातोंको भी लोग यथेष्ट न समझें तो फिर उनके और अधिक यथेष्ट होनेकी आवश्यकता भी नहीं है। अब हम केवल एक दो स्थूल बातें कहकर ही यह प्रबन्ध समाप्त करेंगे।

हमने आरम्भमें नर और नारीके अनेक प्रकारके सम्बन्धोंका उल्लेख करके दाम्पत्य सम्बन्धी आलोचना की है, उसका केवल यही मतलब नहीं है कि जहाँ अन्यान्य सम्बन्ध अस्पष्ट होते हैं, वहाँ भी यह सम्बन्ध स्पष्टतर होता है, बल्कि उसका मतलब यह है कि जीव-मात्रमें जितने सम्बन्ध होते हैं, उन सबमें इसका आकर्षण जिस प्रकार दृढ़तर होता है, उसी प्रकार इसकी स्पृहा और मोह भी दीर्घ-कालव्यापी होता है।

हमारे देशके विज्ञ जनोंने भी कहा है कि छः रसोंमेंसे मधुर रस ही श्रेष्ठ है। इस श्रेष्ठ रसकी उत्पत्ति मनुष्यके यौन बन्धनसे होती है। वास्तवमें सामाजिक मनुष्यने जितने प्रकारके सम्बन्धोंका रस-भोग करना सीखा है, उनमें सबसे अधिक श्रेष्ठ इस मधुर रसमें ही समस्त रसोंका समावेश और विकास दिखाई देता है और इसीलिए थोड़ा-सा ध्यान देनेसे ही पता चल जाता है कि जिस देशमें इस रसकी धारणा जितनी ही क्षीण होती है और बन्धन जितना ही क्षणस्थायी और भग्न-प्रवण होता है, उस देशमें नर और नारीका पारस्परिक सम्बन्ध भी उसी अनुपातमें और उतना ही हीन होता है। अगर यह कहा जाय कि संसारके किसी देश या जातिमें 'सम्बन्धके विचारसे स्त्रीकी अपेक्षा माता या बहन अधिक प्रिय होती हैं, तो यह बात सुननेमें तो बहुत भली लगेगी; लेकिन वास्तवमें ऐसा कहना मिथ्या ही होगा। फिर भी यहाँ पाठकोंको एक विषयमें सतर्क कर देना आवश्यक है। और इसका कारण यह है कि ऐसे कई दृष्टान्त हैं जिनकी जड़ तक यदि पहुँचकर न देखा जाय तो यही भ्रम होगा कि कुछ उलटा ही व्यापार हो रहा है। ऐसी अनेक असभ्य या अर्द्ध असभ्य जातियाँ हैं जिनमें एक ओर तो नारीकी दुर्दशाकी जिस प्रकार कोई सीमा परसीमा नहीं है, उसी प्रकार दूसरी ओर वे घरकी,

बल्कि यों कहना चाहिए कि समाजकी मालकिन रूपमें भी दिखाई देती हैं। असभ्य फ्यूजियन लोगोंके सम्बन्धमें कहा गया है—"oldest women exercise great authority" (अर्थात् उनमें वृद्धा स्त्रियाँ सबसे अधिक मान्य होती हैं और सब विषयोंमें मुख्यतः उन्हींकी बात मानी जाती है।) मेक्सिकोकी आदिम जातिमें भी यही बात है और हायदा लोगोंमें भी। चीनी लोगोंमें वृद्धा पितामही ही घरका सब कुछ करने धरनेवाली होती है। सुमात्रा और मेडगास्करमें और यहाँ तक कि कांगोमें स्त्रियोंको रानीके पदपर अभिषिक्त होते हुए देखा गया है। 'लेकिन इससे क्या? जरा गहराई तक पहुँचते ही यह संशय होने लगता है कि जिन देशोंकी स्त्रियाँ केवल भारवाही जीव हैं, विवाहके समय जिनका मूल्य गौ-बछड़ोंकी तुलनामें निरूपित होता है, सन्तान उत्पन्न करनेमें असमर्थ होनेपर जिन्हें फिर बाजारमें ले जाकर बेच दिया जाता है और जहाँ slave गुलाम कहनेसे केवल स्त्रीका ही बोध होता है, वहाँकी स्त्रियोंका कर्तृत्व किस प्रकार हो सकता है? बस ठीक इसी बातपर बोनक्राफ्ट (Boncraft) ने एक स्थानपर कहा है कि मालूम होता है कि कर्तृत्व नाममात्रका ही है।

हम अपने यहाँके घरोंकी अवस्था सोच रहे थे। हमारे देशमें भी जब घरका मालिक नहीं रह जाता, तब वृद्धा माता या पितामहीको ही घरकी मालकिन माना जाता है, लेकिन उसके बाद क्या होता है? मनके अगोचर कोई पाप नहीं है और हम अपने मनकी बात छिपा नहीं रखना चाहते। इसी देशमें सम्पत्तिके लोभसे गुरुजनोंको बाँधकर जला दिया जाता था। और पुरुषोंके अनेक प्रकारके उत्तरदायित्वोंमेंसे स्पेन्सर साहबकी पुस्तकमें एक विलक्षण उत्तरदायित्व लिखा हुआ है, "It was adopted as a remedy for the practice of poisoning their husbands which had become common among Hindoo women!" (अर्थात्, हिंदू स्त्रियोंमें एक आम रवाज हो गया था कि वे जहर देकर अपने पतिको मार डाला करती थीं और इसीका प्रतिकार करनेके लिए उक्त प्रथा ग्रहण की गई थी।) हम यह तो नहीं जानते कि स्पेन्सर साहबको यह खबर किन पण्डितजीने दी थी, लेकिन स्त्रियोंको जला देनेकी जो प्रथा थी, उसका रंग ढंग देखकर ही शायद बेचारे विदेशी स्पेन्सर साहबकी समझमें उन स्त्रियोंकी किसी बहुत बड़े अपराधकी बात संभव जँची होगी। हाय, बेचारी स्त्रियोंको जल मरनेपर भी छुट्टी

नहीं मिलती ! जो हो, पर है यह बात बिलकुल झूठ और उन्होंने स्वयं ही इसे गढ़ लिया होगा। कारण, स्त्रियोंको जलाकर मार डालनेके पक्षमें इस देशके बड़े बड़े पंडितोंकी ओरसे विलायतमें जो अपील दाखिल की गई थी, उसमें विधवाओंके विरुद्ध इस अभियोगका कोई उल्लेख नहीं है। पर अब इस बातको जाने दीजिए।

बात यह चल रही थी कि ऊपर बतलाये हुए कुछ देशोंमें स्त्रियोंकी अवस्था विशेषमें जो कर्तृत्व बतलाया गया है, उसका वस्तुतः कोई अस्तित्व है भी या नहीं और यदि हो भी, तो उसका किस प्रकारका होना अधिक सम्भव है। पुरुष और स्त्रीके समस्त सम्बन्धोंमें स्त्रीका न्यायसंगत अधिकार या दावा चाहे जो हो, पर स्थान, काल और अवस्थाके भेदसे पुरुष उसका जो मूल्य देता आ रहा है, यही उसका प्राप्य मूल्य है या नहीं। कारण, पुरुष यही कहकर एक प्रकारसे उसका एक बड़ा उत्तर दे सकता है कि अवस्था-भेदसे हम स्त्रियोंका जो मूल्य देते आये हैं, वह ठीक ही हुआ है। जैसे कि इस देशके किसी पंडितने अपनी किसी पुस्तकमें लिखा है कि मनुके समयमें व्यभिचारका श्रोत अत्यन्त प्रबल था; इसीलिए स्त्रियोंपर ऐसे हाड़तोड़ आईन कानून जारी किये गये थे ! हम समझते हैं कि शायद इन पंडितजीकी यही धारणा थी कि व्यभिचारका सारा उत्तरदायित्व स्त्रियोंपर ही है। उसमें पुरुषका उत्तरदायित्व नाम मात्र भी नहीं है। जो हो, परन्तु इस बातकी भी मीमांसा कर लेना आवश्यक जान पड़ता है कि इस उत्तरकी भी कोई जड़ बुनियाद है या नहीं। इससे पहले इस प्रबन्धमें हम एक स्थानपर कह चुके हैं कि यदि संसारमें स्त्रियाँ विरल होतीं तो केवल उसी अवस्थामें नारीका यथार्थ मूल्य निश्चित करना सहज होता। किन्तु हम इस 'यदि' की बात छोड़कर यह बतलानेकी चेष्टा करते हैं कि स्त्रियोंकी वर्तमान अवस्थामें पुरुषोंने उनका उचित मूल्य दिया है या नहीं।

एडम स्मिथने जब पहले-पहल इस बातका प्रचार किया था कि संसारकी समस्त वस्तुएँ जिस नैसर्गिक नियमके अधीन हैं उनका मूल्य भी उसी नियमके अधीन है, उस समय सब लोग उनकी यह बात समझ नहीं सके थे। उस समय लोगोंने यही समझा था कि हम अपनी चीज जिस दामपर चाहेंगे बेचें खरीदेंगे। मूल्य निश्चित करनेवाला उस वस्तुके स्वामीके अतिरिक्त और कोई नहीं है। इसी अहंकारके कारण मनुष्य प्रायः सौ वर्षोंतक इस सत्यको

अस्वीकृत करता रहा। हम यह नहीं कहते कि इस समय सब लोगोंने यह सत्य एक-मत होकर स्वीकृत कर लिया है, परन्तु जिन लोगोंने इसे स्वीकृत कर लिया है, उन्हें यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई है कि यदि इस स्वाभाविक नियमका उल्लंघन किया जाय तो अन्ततक कभी उसका कोई अच्छा फल नहीं हो सकता। इससे न तो स्वयं उन्हीं लोगोंका कोई लाभ हो सकता है और न दूसरे लोगोंका। गेहूँ और चावलके बाजारमें भी कोई लाभ नहीं हो सकता और लड़के-लड़कियां बेचनेके बाजारमें भी कोई लाभ नहीं हो सकता।

इस अन्धताका एक ज्वलन्त दृष्टान्त लीजिए। जबरदस्ती दाम बढ़ानेकी एक जीती-जागती साक्षी हमारे देशकी (बंगालकी) वह प्रथा है जिसके अनुसार कुलीनता वंशगत कर दी गई है। यदि यह बात न होती तो आज अगर किसीको कुलीन ब्राह्मण कहा जाता, तो वह अपने मनमें यही समझता कि मुझे गाली दी जा रही है। आज-कल कुलीन ब्राह्मणोंके लड़के अपनी ससुरालमें जाकर कुछ धन लेकर रात बिताते हैं और दूसरे दिन उसी धनसे गाँजा और भाँग पी डालते हैं। उस अवस्थामें यह बात न हो सकती। समझा कर यह बतलाना व्यर्थ-सा है कि मनुष्य और विशेषतः ब्राह्मण-सन्तान कितनी अधिक हीन होनेके उपरान्त यह काम करनेमें समर्थ होती है। कुलीनके लड़के कुलीनका, भ्रान्त समाज जो मूल्य देता रहा है, उसीसे उसकी इतनी अधिक अवनति हुई है। यदि उनका यथार्थ प्राप्य मूल्य दिया जाता तो न तो उन्हींकी इतनी अधिक अवनति होती और न समाज ही इस प्रकार बराबर शताब्दियों तक अपने सारे शरीरमें अगणित निरुपाय बंगीय रमणियोंका निष्पाप रक्त पोतकर उनके व्यर्थ जीवनके दीर्घ निःश्वास और अभिशाप अपने ऊपर लेकर और भगवानकी कृपासे वंचित होकर इस प्रकार पंगु और मिथ्या हो सकता।

ऐसा मालूम होता है कि लोगोंकी आँखें अब बहुत कुछ खुल गई हैं। जिसका कोई वास्तविक मूल्य न हो, उसका मूल्य चाहे राजाज्ञासे हो और चाहे समाजकी इच्छासे हो, यदि अनुचित रूपसे बहुत अधिक बढ़ा दिया जायगा तो उसका परिणाम कभी मंगलकारक नहीं होगा। यह सत्य सिद्धान्त दूसरी ओर भी ठीक इसी तरह प्रयुक्त किया जा सकता है। जिसका जितना मूल्य हो, उसे ठीक उतना ही मूल्य देना पड़ेगा। चाहे अज्ञानसे हो और चाहे अहंकारसे हो, यदि उसे ऐसे मूल्यसे वंचित किया जायगा तो कभी

उससे कल्याण न हो सकेगा। मिथ्याकी कभी जीत नहीं होगी। यदि इस हिसाबसे जाँच कर देखा जाय तो नारीको जो मूल्य पुरुष अब तक देता आया है, उससे यदि अब तक बराबर उसका भला ही होता आया हो तो निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि वही नारीका प्राप्य मूल्य है। और नहीं तो यह बात स्वीकृत करनी ही पड़ेगी कि पुरुषोंने नारीको अब तक ठगा है, उसे सताया है और साथ ही साथ समाजपर अकल्याण भी लाकर लाद दिया है।

हम यहाँ एक अवान्तर बात कहेंगे। हमारे इस प्रबन्धका कुछ अंश पढ़-कर ही, अभी कुछ दिन हुए, हमारे एक आत्मीयको morbid mind या रुग्ण मनका परिचय मिला था। और एक दूसरे आत्मीयने नर और नारीके विसदृश सम्बन्धकी आलोचना करनेके अपराधमें हमारे विषयमें इसी तरहका कुछ और मन्तव्य प्रकट किया था। हम पहलेसे ही यह बात जानते थे कि पुरुष लोग यह निबन्ध पढ़कर इसी तरहकी बातें कहेंगे। परन्तु इन सब बातोंका उत्तर देते हुए हमें लज्जा आती है।

आरम्भमें आदिम और असभ्य मानव जातिके सामाजिक और सांसारिक आचार और व्यवहारका उल्लेख करते हुए हमें विवश होकर अनेक ऐसी बातें कहनी पड़ी हैं, जिन्हें पढ़नेसे भी मनुष्य सिहिर उठता है। लेकिन यह बात नहीं है कि उन सब बातोंके उल्लेखका प्रयोजन केवल यही हो कि पुरुषोंके दोष दिखलाए जाँय। सामाजिक मानवके सम्बन्धमें एक उक्ति है—"Perhaps in no way is the moral progress of mankind more clearly shown than by contrasting the position of *women* among savages with their position among the most advanced of the civilized." (अर्थात् जंगली और बहशी लोगोंमें स्त्रियोंकी जो अवस्था है, उसकी तुलना करनेसे मानव जातिकी नैतिक उन्नतिका जितना अच्छा पता लगता है उतना कदाचित् और किसी प्रकारसे नहीं लग सकता।) हम इस उक्ति-को बिलकुल सत्य समझते हैं और इसी लिए हमें ये सब दृष्टान्त देनेकी आवश्यकता हुई है। हम यह नहीं जानते कि मनुष्यकी नैतिक उन्नति और अवनतिका पता लगानेके लिए इससे बढ़कर और कोई प्रकृष्ट उपाय है या नहीं; और इसी लिए हमने इतनी बातें कही हैं। अब हमारे दोनों आत्मीय चाहे इस बातपर विश्वास करें और चाहे न करें।

अब हम फिर एक बार मधुर रसकी बात छेड़ेंगे, कारण, यह बात समझ लेना आवश्यक है कि इस रसने मनुष्यको कितने प्रकारसे और कितनी दिशाओंसे वस्तुतः मनुष्य बनाया है। इसी लिए हम जो एक बात पहले कह चुके हैं, अब फिर उसीकी आवृत्ति करते हैं। इस रसका बोध मनुष्यमें जितना ही कम होता है और इसकी ओर जिसकी दृष्टि जितनी ही क्षीण होती है वह उतना ही अमानुष होता है। इस रसको अक्षुण्ण रखनेके प्रयासके कारण ही मनुष्यने अज्ञात भावसे सतीत्वकी सृष्टि की है और इसी रसके माहात्म्यका वर्णन करनेके कारण मनुष्य कवि हुआ है। यह सिद्धान्त अस्वीकृत करनेसे काम नहीं चल सकता कि इस रसकी अवहेलना करनेके कारण ही भारतने एक विशेष युगमें और युरोपने मध्य युगमें नारीको peculiar representative of sexuality (नर-नारी-भावकी विलक्षण प्रतिनिधि) मानकर जो भूल की थी, उसीके कारण उन्हें पतनके मार्गकी ओर जाना पड़ा था। इस रस-बोधका प्रधान उपादान नारीका सौन्दर्य है। पुरुष चाहे कितना ही अधिक बर्बर क्यों न हो, परन्तु यह कभी हो ही नहीं सकता कि वह रूपका सम्मान न कर सके। यहाँ तक कि जो पुटया लोग बैलों आदिके अभावमें स्त्रियोंके कन्धेपर हलका जुआँ रखकर जमीन जोतते हैं, उनमें भी यह देखा जाता है कि जो स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक सुन्दरी होती हैं, उन्हें हलमें कम जुतना पड़ता है और फिर ज्यों ज्यों उनका सौन्दर्य क्षीण होता जाता है, त्यों त्यों उन्हें हलमें अधिक जुतना पड़ता है। कोरियाका इतिहास लिखनेवाले भी कोरियावासियोंके सम्बन्धमें ठीक इसी प्रकारके व्यवहारका अनेक स्थानोंपर उल्लेख कर गये हैं।

इस प्रकार पता चला है कि रूपसे कुछ सुभीता जरूर होता है, फिर चाहे वह सुभीता कितना ही कम क्यों न हो। और फिर यह सुभीता अकेली रूप-शालिनी स्त्रीको ही नहीं होता; रूप पुरुषकी हृदय-वृत्तिको उच्च करनेमें भी यथेष्ट सहायता देता है। इससे वह अपनी निष्ठुरताको, चाहे दो ही दिनके लिए सही, दमन करना सीखता है। परन्तु उसकी यह शिक्षा स्वयं उसीके दोषके कारण अधिक दूर तक अग्रसर नहीं हो सकती। देखा जाता है कि जो समाज जितना ही नीचा होता है और जिस समाजमें नारीकी अवस्था जितनी ही अधिक दुःखपूर्ण तथा कष्टमय होती है, उसमें नारीका सौन्दर्य भी उतना ही अल्प तथा उतना ही अधिक क्षण-स्थायी होता है। हम इस बातके दृष्टान्त

देकर इस निबन्धका कलेवर नहीं बढ़ावेंगे, परन्तु अधिकांश यात्री यह लिख गये हैं कि जिन लोगोंमें नारीकी अवस्था अत्यन्त निम्न कोटिकी होती है, उनमें बल्कि पुरुष ही देखनेमें अधिक सुन्दर और अच्छे होते हैं, उनकी स्त्रियाँ तो इतनी अधिक कुरूपा और भद्दी होती हैं कि उन्हें देखनेसे भी मनमें घृणा उत्पन्न होती है। परन्तु क्या यही बात स्वाभाविक और संगत नहीं है? उन्हें कठोर परिश्रम करना पड़ता है, दिनका अधिकांश समय बन्द और खराब हवामें ही चल फिरकर बिताना पड़ता है, बहुत ही छोटी अवस्थामें सन्तान प्रसव करना पड़ता है, उसका पालन-पोषण करना पड़ता है, और पुरुषोंका बचा हुआ जूठा और खराब अन्न खाना पड़ता है। भला ऐसी अवस्थामें उनका रूप किस प्रकार अधिक दिनों तक ठहर सकता है? और फिर रूपका मतलब सिर्फ रूप ही नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य भी तो है। उनका रूप चला जाता है, स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है, दो दिनमें यौवन सूखकर उतर जाता है और इसके बाद उन दुर्बल तथा विगतयौवना स्त्रियोंसे पुरुष बल-पूर्वक जो कुछ वसूल कर सकते हैं, कर लेते हैं जिससे चारों ओर अमंगल ही अमंगल बढ़ता रहता है।

यदि स्थान और समय होता तो हम यह बात भी सिद्ध कर दिखलाते कि ज्यों ज्यों समाजमें नारीका स्थान नीचे उतरता आता है, त्यों त्यों नर और नारी दोनोंके जीवित रहनेका काल भी बराबर कम होता जाता है। हम समझते हैं कि शायद इसीलिए सभी असभ्य या अर्ध-सभ्य लोग अपेक्षाकृत थोड़े दिनों तक जीवित रहते हैं। यदि इस प्रसंगमें हम स्वयं अपने घरोंकी ओर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि उन लोगोंके साथ हमारी कोई बात नहीं मिलती। यदि उन लोगोंकी तरह हमारे यहाँकी स्त्रियाँ थोड़े ही दिनोंमें अपना स्वास्थ्य तथा यौवन नहीं गँवा बैठती हों, उनके गर्भसे उत्पन्न सन्तान रोगी और अल्पायु न होती हो, थोड़ी ही अवस्थामें विधवा हो जानेपर वे अपने घर लौटकर दुखियाकी गृहस्थी और भी अधिक भाराक्रान्त न करती हों और आवश्यकता होनेपर हम उनके लिए सत् और स्वाधीन प्रकारसे जीविका उपार्जन करनेका रास्ता बन्द न कर देते हों, तो अवश्य ही यह बात स्वीकृत करनी पड़ेगी कि जो मूल्य हम अब तक स्त्रियोंको देते चले आये हैं, वही उनका ठीक मूल्य है। और नहीं तो कहना पड़ेगा कि हम लोगोंसे भूल हुई है और धर्मतः उस भूलका मार्जन करनेके लिए हम लोग बाध्य हैं।

यदि हम केवल इसी एक बातको साहसपूर्वक विचार करके देखें तो अनेक समस्याओंकी मीमांसा हो सकती है कि जिन सब विधि-निषेधोंकी शृंखलाएँ हम लोग नारियोंके शरीरपर लादकर स्वयं ही अपनी सुख्यातिके गीत गाते फिरते हैं, उनका कोई अच्छा फल हो रहा है या नहीं। अपनी भलाई और बुराई देखना कोई कठिन काम नहीं है; कठिन काम तो उसे केवल स्वीकार कर सकना ही है। हम अपने देशके पुरुषोंसे यही अनुरोध करते हैं कि वे यह कठिन कार्य निर्भय होकर स्वीकार कर लें। उस अवस्थामें आपसे आप यह स्थिर हो जायगा कि कौन-सी विधियाँ और निषेध रहेंगे और कौन-सी विधियाँ या निषेध नहीं रहेंगे और कौनसे विधि-निषेध समयोपयोगी होंगे और किन विधि-निषेधोंसे वर्त्तमान कालमें कल्याण होगा। उस समय यदि इस तर्ककी मीमांसा न की जायगी कि मनुके समयमें व्यभिचारका स्रोत प्रबल था या नहीं, तो भी काम चल जायगा। यह चालबाजी चल सकती है कि हम मधुर रसका सारा रस नारियोंमेंसे ही निचोड़कर निकाल लें और स्वयं कुछ भी रस न दें, लेकिन, यह चालबाजी सदा नहीं चल सकती। विश्वेश्वरके अलंघ्य न्यायालयमें एक न एक दिन पुरुष पकड़े ही जायँगे। हो सकता है कि रस तो उस समय भी मधुर रहे, परन्तु शायद उसका मधुर फल न रह जायगा।

एक बात और है। सामाजिक नियमोंके सम्बन्धमें जो लोग आलोचना करके अपने परिश्रमका फल लिपिबद्ध कर गये हैं, वे लोग इस सत्यका भी आविष्कार कर गये हैं कि समाजमें नारीका स्थान अवनत होनेके साथ ही साथ शिशुओंका स्थान भी आपसे आप नीचे उतर आता है। अब यह समझना कठिन नहीं है कि यह बात क्यों होती है और ऐसा होना स्वाभाविक है या नहीं। हमने भी इससे पहले अनेक दृष्टान्त देकर यह बतलाया है कि शिशुका अपनी माताके साथ जितना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, उतना घनिष्ठ सम्बन्ध अपने पिताके साथ नहीं होता। इसी लिए संसारमें जो अनेक बड़े बड़े कृती पुरुष हो गये हैं, उनके जीवनकी आलोचना करनेसे पता चलता है कि उन सभी लोगोंने ऐसी मातायें पाई थीं जिनके कारण संसारमें उन्नति करना उनके लिए असम्भव नहीं हो सका था। परन्तु यदि माताओंकी अवस्था दिनपर दिन नीचे गिरती चली जाय और उसके अवश्यम्भावी फलसे देशमें कृती सन्तानकी संख्या दिनपर दिन कम होती चली

जाय, तो यह बात निश्चित है कि आज-कलके प्रतियोगिताके दिनोंमें वह जाति संसारकी और जातियोंके समान होकर जीवित न रह सकेगी। लेकिन इसके उत्तरमें जो लोग यह प्रश्न करते हैं कि आखिर हमारी जाति इतने दिनों तक टिकी किस तरह रही, उन लोगोंसे हम केवल यही कहना चाहते हैं कि किसी तरह केवल प्राण धारण करके जीते रहना ही मनुष्यका जीवित रहना नहीं कहला सकता।

हम समझते हैं कि शायद इस विषयमें कोई मत-भेद नहीं हो सकता कि समाजमे नारीका स्थान नीचे गिरनेसे नर और नारी दोनोंका ही अनिष्ट होता है और इस अनिष्टका अनुसरण करनेसे समाजमें नारीका जो स्थान निर्दिष्ट हो सकता है, उसे समझना भी कोई कठिन काम नहीं है। समाजका अर्थ है नर और नारी। उसका अर्थ न तो केवल नर ही है और न केवल नारी ही है। दोनोंके ही कुछ कर्तव्य हैं। आवश्यकता केवल यही देखनेकी है कि उन कर्तव्योंका सम्यक् रूपसे प्रतिपालन होता है या नहीं। कर्तव्यसे केवल अपने ही कार्यका अभिप्राय नहीं है, बल्कि उसका अभिप्राय यह भी है कि दूसरेको भी ठीक उतना ही कार्य करनेका अवकाश दिया जाता है या नहीं। हम अपने पाठकोंसे यही बात समझनेके लिए कहते हैं।

एक और बात यह भी है कि पुरुषोंके समस्त कार्य स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं और स्त्रियोंके समस्त कार्य पुरुष नहीं कर सकते। अथवा जो कर्तव्य स्त्री और पुरुष दोनोंके मिलकर करनेसे सुसंपन्न होता है, वह भी दोनोंमेंसे किसी अकेलेके द्वारा सर्वांगसुन्दर नहीं हो सकता। इसलिए सारे समाजको ही यह देखना उचित है कि हमारे यहाँ स्त्रियोंका कर्तव्य प्रतिपालित होता है या नहीं। उसे यह भी देखना चाहिए कि कार्य करनेकी न्यायोचित स्वाधीनता तथा प्रशस्त स्थान उन लोगोंके लिए छोड़ा गया है या नहीं। यदि जेलमें कैदियोंसे भी अच्छा काम कराना होता है तो उनकी शृंखलाओंका भार हलका करनेकी आवश्यकता होती है। अवश्य ही हम यह नहीं कह रहे हैं कि उन्हें समस्त शृंखलाओंसे एक दमसे मुक्त कर दिया जाय। ऐसा करनेसे तो अमेरिकाकी स्त्रियोंकी-सी दशा हो जायगी। अमेरिकन स्त्रियोंकी अबाध स्वाधीनता उच्छृंखलतामें पर्यवसित हो गई है। किसी जमानेमें प्राचीन रोममें बड़े बड़े घरोंकी महिलाओंको सार्वजनिक वेश्या बननेसे बचानेके लिए कानून बनाना पड़ा था। हमने एक बार यह भी कहीं पढ़ा है कि तिब्बतमें एक ही

स्त्रीके एक साथ कई कई पति होनेकी चर्चा करते हुए एक ग्रन्थकारने शायद कुछ परिहासपूर्वक ही लिख दिया था कि ये सब बातें लिखते हुए हमें भय होता है कि कहीं अमेरिकाकी स्त्रियोंके मनमें भी यह बात न बैठ जाय और कहीं वे भी यह न कहने लगें कि हम भी यही चाहती हैं ! सो अमेरिकन स्त्रियोंके रंग-ढंग देखकर सभी पुरुषोंके हाथ पैर मानो उनके पेटमें घुसने लग गये हैं, उनकी अक्ल गुम हो गई है । इसी लिए कुछ शृंखलाओंकी भी आवश्यकता है । दूसरी ओर यदि वे सारी शृंखलायें एक दमसे उतारकर फैंक दी जायँ तो उससे स्वयं पुरुष भी कितने अधिक अविचारी, उद्धत और उच्छृंखल हो जाते हैं, इस भारतवर्षमें ही ऐसे दृष्टान्तोंका असद्भाव नहीं है ।

जो हो, बात यह हो रही थी कि स्त्रियोंको काम करनेकी न्यायोचित स्वाधीनता मिलनी चाहिए और उनके लिए न्यायोचित स्थान छोड़ दिया जाना चाहिए । साथ ही इस बातकी भी मीमांसा हो जानी चाहिए कि कौनसे काम स्त्रियोंके हैं, कौनसे काम पुरुषोंके हैं और कौनसे दोनोंके हैं । मानव-समाजके जितने ही निम्न स्तरमें उतरा जाय, उतना ही यह देखनेमें आता है कि उस समाजके लोग बराबर यही भूल करते आ रहे हैं और इससे उन्हें कुछ भी सुभीता नहीं हो सका है । अधिकांश स्थानोंमें पुरुष केवल लड़ाइयाँ लड़ते और शिकार करते हैं । इसके सिवा वे और कुछ भी नहीं करते । वहाँ जीवन धारण करनेके बाकी सभी काम केवल स्त्रियोंको ही करने पड़ते हैं । स्त्रियां ही पानी भरती हैं, जलानेकी लकड़ी काटती हैं, भार ढोतीं हैं, जमीन जोतती हैं, सन्तान उत्पन्न करती हैं, भोजन बनाती हैं, खिलाती-पिलातीं हैं और सभी काम करती हैं । यहाँ तक कि शिकारमें जो पशु मिलते हैं, उन्हें ढोकर घर लानेके लिए उन्हें पुरुषोंके पीछे पीछे वनों और जंगलों तक घूमना पड़ता है । और इन सब बातोंका अनिवार्य फल भी जो होना चाहिए, ठीक वही होता है ।

अवश्य ही हम यह स्वीकार करते हैं कि सभी देशोंमें नर और नारियोंके कार्योंके सम्बन्धमें एक-सी धारणा नहीं हो सकती और न कहीं एक-सी धारणा होती ही है । लेकिन थोड़ा ध्यानपूर्वक देखनेसे ही यह पता चल जाता है कि सभ्यताके अनुपातसे कर्त्तव्य-विभागका एक सादृश्य है, और यह अनुपात जितना बढ़ता जाता है, उतना ही यह सादृश्य भी कम होता जाता है । उदाहरणार्थ यदि अपने व्यवहारके लिए कहीं दूरसे जल लानेकी

आवश्यकता होगी, तो कोई फ्रान्सीसी या अँग्रेज स्वयं जाकर वह जल लावेगा। लेकिन हम तो यह काम करते हुए मारे लज्जाके मर ही जायँगे और इसके बदलेमें अपनी गर्भवती स्त्रीके कंकालपर एक बड़ा-सा घड़ा लादकर उसे जलाशयकी ओर भेजकर लज्जाका निवारण करेंगे। जब पेरूकी उन्नत अवस्थाके दिन थे, तब वहाँके पुरुष चरखा कातते तथा कपड़े बुनते थे और स्त्रियाँ हल चलाती थीं। आज-कल भी सामोयाके निवासी घरमें भोजन बनाते हैं और स्त्रियाँ बाजार-हाटमें सौदा खरीदने जाती हैं। एबीसीनियाके पुरुषोंको बाजार जाते हुए तो मानो मौत ही आ जाती है; परन्तु वे घाटपर जाकर स्त्रियों और पुरुषोंके सब कपड़े मजेमें धो लाते हैं। इस प्रकार काम धन्धेकी धारणा सब देशोंमें एक-सी नहीं है और यह बात भी ठीक है कि यदि छोटी-मोटी बातोंमें यह धारणा एक न हो तो इससे कोई विशेष हानि या लाभ नहीं हो सकता; परन्तु यदि यह धारणा स्वाभाविक नियमका अतिक्रमण कर जाय तो उससे अमङ्गल होना अनिवार्य है। अर्थात् जिस प्रकार सभी विषयोंमें स्त्रियोंके काम करनेसे पुरुष करडो लोगोंकी तरह बिलकुल अकर्मण्य और हीन हो जाते हैं, उसी प्रकार डाहोमी राजाकी स्त्री-सेना भी वास्तवमें unsexed या लिंग-हीन ही लड़ाई लड़ सकती है। इससे स्वयं अपना भी कल्याण नहीं होता और देशका भी कल्याण नहीं होता।

परन्तु इन सब पुरुषोचित काम-धन्धोंके कारण ही पंडितोंके एक दलके मनमें विश्वास उत्पन्न हो गया है कि आदिम युगमें नर और नारीमें नारियोंका ही स्थान ऊँचा था। नारियाँ ही leader of civilization अर्थात् सभ्यताकी नेत्रियाँ थीं; और स्पेन्सर साहबने इस बातका खूब अच्छी तरह अनुसन्धान करके कि संसारमें स्त्रियोंका स्थान किस प्रकार और किन कारणोंसे बराबर नीचे गिरता आया है, यह निश्चित किया है कि जिस देशके लोग जितने ही अधिक युद्ध-प्रिय रहे हैं, कमसे कम आत्म-रक्षाके लिए जिन्हें घर और बाहर जितनी ही अधिक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी हैं वे लोग स्त्रियोंपर अत्याचार भी उतना ही अधिक करते आये हैं और उनपर उन्होंने अपने शरीरके जोरका उतना ही ज्यादा प्रयोग किया है। यह बात नहीं है कि स्त्रियोंने अपनी स्वाभाविक कोमलता और नम्रताके कारण ही स्वयं अपनी इच्छासे ये सब कष्ट और अधीनता स्वीकृत की है। नहीं, वे अपने शारीरिक

बलसे पार नहीं पा सकीं। इसीलिए उन्होंने ये सब कष्ट सहे हैं और अधीनता स्वीकृत की है। यदि अपने शारीरिक बलसे पार पा सकतीं तो वे भी कभी ये सब बातें स्वीकृत न करतीं। कारण, यह बात देखी गई है कि जहाँ सुभीता और संयोग मिला है, वहाँ स्त्रियाँ भी निष्ठुरता और रक्त-पिपासामें पुरुषोंसे तिल भर भी कम नही सिद्ध हुई हैं। यहाँ तो यही बात देखने और विचारनेकी है कि यदि इसके उत्तरमें पुरुष यह कहें कि हमने अपने शारीरिक बलके कारण दुर्बल स्त्रियोंके ऊपर अत्याचार नहीं किया है, बल्कि समझ-बूझकर धीरे और स्थिर भावसे विवेचना करके, कर्तव्य और मंगलके लिए ही बाध्य होकर स्त्रियोंके लिए यह निम्न स्थान निर्दिष्ट कर दिया है, तो यह सत्य नहीं है।

अवश्य ही यह बात नहीं है कि स्पेन्सरका यह मत सभी लोगोंने बिना किसी प्रकारके प्रतिवादके स्वीकृत कर लिया है; लेकिन जितने विभिन्न प्रतिवाद कमसे कम हमारे देखनेमें आये हैं, उनसे हमें स्पेन्सरका मत ही अधिक सत्य जान पड़ता है। उन्होंने कहा है—"Militancy implies predominance of compulsory co-operation." (अर्थात् युद्ध-प्रियता अनिवार्य और जबरदस्तीके सहयोगको प्रधानता देती है) और तब इसके अवश्यम्भावी फलका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—"Hence the disregard of women's claims shown in stealing and buying them; hence the inequality of *status* between the sexes entailed by polygamy, hence the use of women as labouring slaves; hence the life and death power over wife and child; and hence that constitution of the family which subjects all its member to the eldest male. Conversely, the type of individual nature developed by voluntary co-operation in societies that are predominantly industrial, whether they be peaceful, simple tribes, or nations that have in great measure out grown militancy, is a relatively altruistic nature." (अर्थात् इसी लिए स्त्रियोंको चुराने और बेचनेमें उनके अधिकारोंका कोई ध्यान नहीं रक्खा जाता; इसलिए स्थिति या हैसियत की वह असमानता है जो स्त्रियों और पुरुषोंके सम्बन्धके विचारसे बहु-विवाहमें दिखाई देती हैं; इसीलिए, स्त्रियोंका परिश्रम करनेवाली दासियों या गुलामोंके रूपमें उपयोग होता है; इसीलिए पुरुषोंको अपनी स्त्री और बच्चोंपर वह अधिकार प्राप्त होता है जिससे वे चाहें तो उन्हें जीवित रहने दें और चाहें तो मार डालें; और इसीलिए उस प्रकारके परिवारका संघटन

होता है जिसमें घरके सब लोग सबसे अधिक वयस्क नरके अधीन रहते हैं। इसके विपरीत वे समाज हैं जो मुख्यतः शिल्प आदिमें लगे रहते हैं और जिनमें स्वेच्छापूर्वक नर और नारीका सहयोग होनेके कारण व्यक्तिगत प्रकृति या स्वरूपका विकास होता है—अब वे समाज चाहे शान्तिपूर्वक रहनेवाले हों या सीधे-सादे फिरकोंके समाज हों और चाहे ऐसे राष्ट्रोंके समाज हों, जो सैनिकताकी सीमासे बहुत आगे बढ़ गये हैं; और ऐसे समाजोंके लोगोंकी वृत्ति अपेक्षाकृत परोपकार भावसे युक्त होती है।)

वास्तवमें यह Compulsory co-operation या बलात् कराया जानेवाला सहयोग ही सबसे बुरा है। जहाँ इस प्रकारका सहयोग जितना ही अधिक binding या बन्धनकारी होता है, फिर चाहे वह सहयोग लड़ाईके लिए हो और चाहे परलोक सुधारनेके लिए हो, वहाँ स्त्रियोंकी अवस्था उतनी ही अधिक हीन होती है। धर्मकी कट्टरता और अधर्मके अत्याचारने नारियोंका स्थान कितना नीचे गिरा दिया है इसका सबसे बड़ा प्रमाण युरोपका मध्ययुग है। इस प्रबन्धके आरम्भमें ही उसकी ओर कुछ संकेत किया गया है; और आवश्यकता होनेपर उस युगकी सैकड़ों क्या बल्कि हजारों ही ऐसी बातें बतलाई जा सकती हैं लेकिन हम समझते हैं कि ऐसा करना आवश्यक नहीं है। इस प्रबन्धमें इस बातकी आलोचना करना अप्रासंगिक होगा कि धर्मकी कट्टरताने क्यों नारियोंको इतना नीचे गिरा दिया है; इसलिए हम उसे छोड़ देते हैं। केवल यही एक स्थूल बात कह देते हैं कि धर्मकी ज्यादतीका प्रधान उपादान विरक्ति है। अर्थात् यह भाव दिखलाना कि सांसारिक लोग जिन चीजोंको पानेकी प्रार्थना करते हैं, उन चीजोंके प्रति हमारी कोई आसक्ति नहीं है। धन-दौलत और रुपया-पैसा बहुत ही बुरी चीज है और इन्हीं सब चीजोंकी तरह स्त्री भी है। वह the devil's gate शैतानका दरवाजा है, 'द्वारं किमेकं नरकस्य नारी'। नारी नरकका द्वार है और इसीलिए धर्म-चर्चाका यह सबसे श्रेष्ठ बीज-मन्त्र है अर्थात् यदि अपने पर-लोकका काम सँवारना चाहते हो तो स्त्रियोंको नरकके द्वारके समान समझो; और यदि इस लोकका काम करना चाहते हो तो हम लोगोंके देशमें जो व्यवस्था थी, उसीके अनुसार काम करो। जितने विवाह कर सकते हो, उतने विवाह करो—उसके आठ दस तरहके रास्ते हैं—और मरनेपर जिस तरह हो सके, अपनी स्त्रियोंको अपने साथ लेते जाओ। अगर

अपने साथ न ले जा सको तो उन्हें जूजूका भय दिखलाकर जड़-भरत बनाकर छोड़ जाओ। monogamy या एक पत्नीके साथ विवाहकी प्रथा जो स्त्रियोंके यथार्थ सम्मानका आधार है और जो नर-नारीका एक मात्र प्रकृत तथा स्वाभाविक बन्धन है, उसकी इस देशमें प्रायः कोई धारणा ही नहीं है और सतीत्वकी इतनी असीम रीति-नीतियाँ हैं और उन्हें बनाये रखनेके लिए इतने अद्भुत अद्भुत जाल हैं जितने और किसी देशमें कभी बने ही नहीं।

स्मरण आता है कि हमने किसी बहुत बड़े आदमीके लेखमें पढ़ा था कि सब प्रकारके सामाजिक प्रश्नोंका जो एक बहुत बड़ा और बढ़िया उत्तर हमारे देशने दिया है, वह इस समय भी सारे संसारके सामने है और उसकी सफलता अनिवार्य है। न जाने हमारे देशने कौन-सा वह बड़ा उत्तर दिया है और संसारमें ऐसे कौनसे लोग हैं जो उसके लिए मुँह बाये बैठे। लेकिन इस बातका पता जरूर चल रहा है कि उसका फल अनिवार्य हो उठा है। उनकी देखा-देखी और भी बहुतसे लोगोंने—ऐसे लोगोंने जो सामाजिक इतिहासकी कोई परवा नहीं करते—इन सब कल्पनाओंकी प्रशंसाके गीत गाने आरम्भ कर दिये हैं। जिस प्रकार "बहुत बड़ा और बढ़िया उत्तर दिया है" "समस्त सामाजिक प्रश्नों" और "संसारके सामने है" आदि बातोंका अर्थ समझना कठिन है, उसी प्रकार इन सब साहित्यिक शब्दाडम्बरोंका प्रतिवाद करना भी कठिन है। अन्यान्य जातियाँ देखते देखते बड़ी होती जा रही हैं; नर और नारियाँ मिलकर पतित समाजको थोड़े ही दिनोंमें ढकेलकर ऊपर उठाती चली जाती हैं, सब लोग अपने अपने न्यायोचित अधिकारमें स्वच्छन्द रूपसे चल-फिरकर उन्नत होते चले जा रहे हैं। लेकिन हमारे यहाँके लोगोंके सामने ये सब बातें कुछ मूल्य ही नहीं रखतीं और हमारे देशका वही न समझमें आनेवाला "बहुत बड़ा और बढ़िया उत्तर" ही बहुत बड़ा और बढ़िया है और उसकी भावी काल्पनिक सफलता ही सबसे बढ़कर वांछनीय है। वही जाति-भेदकी असंख्य संकीर्णता, बालिका-विवाह, बालिकाका विवाह न करनेपर जात चली जाना, बारह वर्षकी विधवा लड़कीको देवी बना डालनेकी बहादुरी, पचास बरसके बुड्ढेके साथ ग्यारह बरसकी लड़कीका विवाह और उसके दो ही बरस बाद उसके गर्भसे सन्तान—ये सब ही बड़े और बढ़िया उत्तर हैं और फिर इस बीचमें जरा भी बोलनेकी कोई गुंजाइश नहीं।

पंडित लोग हैं हैं करते हुए दौड़े आवेंगे और पूछेंगे—"क्या तुम हमारे ऋषि-मुनियोंसें भी ज्यादा समझते हो ?" यहाँ हमें वह आम खरीदनेवाली बात याद आ जाती है। किसी आम बेचनेवालेने कहा—"चखकर देख लीजिए। बिलकुल मिसरीकी तरह मीठा है।" जब खाकर देखा, तब वह इतना खट्टा निकला, जितना खट्टा आम जीवनमें हमने कभी खाया ही नहीं था। लेकिन उस आदमीसे हम किसी तरह यह न मंजूर करा सके कि वह आम खट्टा है। वह जोर जोरसे चिल्लाकर कहने लगा—"वाह! आपके खट्टा कह देनेसे ही हम मान लेंगे ? हमारे पेड़का आम है, हम नहीं जानते ?" भला इसका और क्या उत्तर हो सकता है ?

अँगरेजीमें जिसे Ethics (आचार-शास्त्र) कहते हैं, उसकी एक बिलकुल प्रारम्भिक बात यह है कि कोई विसदृश हेतु न रहनेकी अवस्थामें हम अपनी स्वाधीनताको खींचकर केवल उतनी दूर तक ले जा सकते हैं, जहाँ तक वह और किसीकी तुल्य स्वाधीनतापर आघात न करे। इन्हीं दो बातोंके द्वारा मनुष्यके प्रायः सभी कार्य नियन्त्रित किये जा सकते हैं; और हमारा विश्वास है कि सभी प्रकारके सामाजिक प्रश्न इसीके भीतर समा जाते हैं। इसे जो समाज जितना ही अधिक अग्राह्य मानकर चला है, उसने स्त्रियोंपर उतना ही अधिक अत्याचार और अन्याय किया है और स्त्रियोंको उनके प्राप्य अंशसे वंचित रखकर उन्हें भी नीचे गिराया है और स्वयं भी अवनत हुआ है। यह बात हम एक दृष्टान्त देकर स्पष्ट कर देते हैं। मान लीजिए कि एक कन्या है जो सदा बीमार रहती है और बहुत ही दुर्बल, अशिक्षिता तथा अपटु है। लेकिन फिर भी एक खास उम्रमें उसका विवाह करना ही पड़ेगा; अर्थात् मातृत्वका भारी भार उसे अपने सिरपर उठाना ही पड़ेगा। उसीके साथ एक और विधवा लड़की है जो सबल, स्वस्थ और शिक्षिता है और जो मातृत्वके लिए पूर्ण रूपसे उपयोगिनी है—आदर्श जननीके सभी सद्गुणोंसे भगवानने उसे विभूषित किया है, लेकिन भी फिर उसे उसके स्वाभाविक तथा न्याय-संगत अधिकारसे वंचित करना होगा। अब यह बात निस्सन्देह रूपसे कही जा सकती है कि इससे शास्त्रकारोंकी मर्यादाकी भले ही रक्षा हो जाती हो, परन्तु धर्मकी मर्यादाकी रक्षा नहीं हो सकती। न तो दुर्बल और रोगी कन्याका विवाह करनेसे ही हो सकती है और न स्वस्थ तथा सबल विधवाको सदा विधवा रखनेसे ही हो सकती है।

सुसभ्य मनुष्यकी स्वस्थ, संयत तथा शुभ बुद्धि नारी जातिको जो अधिकार अर्पित करनेके लिए कहती है, वही मनुष्यकी सामाजिक 'नीति है और उसीसे समाजका कल्याण होता है। समाजका कल्याण इस बातसे नहीं होता कि किसी जातिकी धर्म-पुस्तकमें क्या लिखा है और क्या नहीं लिखा है। नारीके मूल्यका विवेचन करते हुए हम अब तक इसी नीति और इसी अधिकारकी बात कहते आये हैं। हमने supply और demand अर्थात् उपज और माँगकी कीमत भी नहीं कही और यह आशा भी नहीं की कि कोई ऐसा समय आवेगा, जब कि पुरुषोंकी संख्या बहुत बढ़ जायगी और स्त्रियाँ बिलकुल विरल हो जायँगी। नारीका मूल्य निर्भर करता है पुरुषके स्नेह, सहानुभूति और न्याय-धर्मपर। भगवानने उसे दुर्बल ही बनाया है और पुरुष उसके बलके इस अभावकी पूर्ति ऊपर बतलाई हुई वृत्तियोंकी ओर देखकर ही कर सकता है, धर्म-पुस्तकोंकी बातोंकी बालकी खाल निकालकर और उनके अबोध्य अर्थोंकी सहायतासे उसकी पूर्ति नहीं कर सकता।

इसका उज्ज्वल दृष्टान्त जापान है। वह अपनी स्त्रियोंका स्थान उसी दिनसे उन्नत कर सका है, जिस दिनसे अपनी सामाजिक रीति-नीतिके अच्छे-बुरेका विचार वह धर्म और धर्म-व्यवसायियोंके चंगुलसे बाहर निकाल सका है। कुछ ही दिन पहले चीन देशकी स्त्रियोंकी तरह जापानकी, स्त्रियोंकी दुर्दशाकी भी कोई सीमा नहीं थी। यह बात केवल युरोपके सम्बन्धमें ही नहीं, बल्कि और भी अनेक देशोंके सम्बन्धमें भी बिलकुल ठीक है—"clergy have been the worst enemies of women, women are their best friends." (अर्थात्, धर्म-याजक तथा पुरोहित स्त्रियोंके सबसे बड़े शत्रु रहे हैं और स्त्रियाँ उनकी सबसे अच्छी मित्र रही हैं।) नारियोंका स्थान अवनत करनेके लिए धर्मव्यवसायियोंका हौसला कहाँ तक बढ़ जाता है, इसका पता सेन्ट एम्ब्रोसे (St. Ambrose) की एक उक्तिसे चल सकता है। उन्होंने बिलकुल सन्देह-रहित होकर इस बातका प्रचार किया था कि "Marriage could not have been god's original theme of creation." (अर्थात्, विवाह कभी ईश्वरकी सृष्टि-रचनाका मौलिक विचार नहीं हो सकता। ईश्वरने सृष्टिकी रचना करते समय कभी यह न चाहा होगा कि लोग विवाह करें।) ईश्वरका अभिप्राय भी उन लोगोंके लिए अगोचर नहीं रहता, तब किसकी मजाल है कि उनपर अविश्वास करे?

इसका व्यतिक्रम एक मात्र इसलाम धर्ममें ही देखनेमें आता है। यद्यपि यह बात समझाकर बतलाना बहुत कठिन है कि कुरानमें स्त्रियोंका ठीक ठीक कौन-सा स्थान है, तथापि ये सब बातें अस्वीकृत नहीं की जा सकतीं कि मुहम्मद साहब नारी जातिको बहुत ही श्रद्धाकी दृष्टिसे देखनेका आदेश दे गये हैं, पुत्र और कन्यामें आकाश-पातालका व्यवधान खड़ा करनेका निषेध कर गये हैं और विधवाओंके सम्बन्धमें—जिनकी अवस्था अरबों और यहूदियोंमें सबसे अधिक शोचनीय और निरुपाय थी —यह आज्ञा दे गये हैं कि उनपर दया और न्यायदृष्टि रक्खी जाय। वास्तवमें इस बातमें लेश भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि मुहम्मद साहबके समयमें अरबी स्त्रियोंकी जो भयंकर अवस्था थी, उसकी तुलनामें अरबके इस नये धर्मने उनकी अवस्था हजार गुनी अच्छी कर दी थी। हम यह नहीं कह सकते कि हार्नबेक और रिकाट (Hornbeck, Ricaut) आदि ग्रन्थकार क्या सोचकर इस बातका प्रचार कर गये हैं कि मुसलमानोंके मतसे नारीके आत्मा नहीं होती और नारियोंको वे लोग पशुओंकी तरह समझते हैं। हमें तो कुरानमें कहीं कोई ऐसी बात नहीं मिली। बल्कि उसके तीसरे अध्यायके अन्तमें इस आशयकी एक उक्ति मिली है कि मृत्युके उपरान्त दुष्कर्म करनेवालोंको ईश्वर दंड देता है; और दंड देते समय वह नर और नारीका कोई भेद नहीं करता। और यही उक्ति देखकर हमें ऐसा मालूम होता है कि मुहम्मद साहबने नारीकी आत्माका अस्वीकार नहीं किया है। कुरानके चौथे अध्यायमें और दूसरे अनेक स्थानोंमें बार बार कहा गया है कि 'स्त्रियोंके साथ दयापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए और उन्हें उनके न्यायोचित अधिकारोंसे वंचित नहीं करना चाहिए। फिर भी बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि इसलाम धर्ममें स्त्रियोंका स्थान बहुत ही नीचे है।

हम समझते हैं कि इसका कारण कदाचित् यही है कि कुरानमें बहु-विवाहकी अनुमति दी गई है। चौथे अध्यायके आरम्भमें ही इस प्रकारके आदेश हैं —"Take in marriage of such other women as please you, two or three or four and no more." (अर्थात्, ऐसी दो, तीन या चार स्त्रियोंके साथ विवाह कर लो जो तुम्हें अच्छी लगें; लेकिन चारसे अधिक स्त्रियोंके साथ विवाह मत करो।) इसके सिवा मुहम्मद साहब इस प्रकारकी भी बहुत-सी आशाएँ दिला गये हैं कि वे विश्वासी और साधु लोग

स्वर्गमें पहुँचकर किस प्रकारकी सुख-सम्पति और आमोद आह्लादका भोग कर सकेंगे। इस विषयकी भी बहुत बारीकीके साथ आलोचना की गई है कि स्वर्गमें धर्मपर विश्वास रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिए किस प्रकारकी और कितनी हूरें निर्दिष्ट होंगी; परन्तु यह बात निस्संकोच रूपसे नहीं कही जा सकती कि मर्त्यलोकवाली मानवीकी स्वर्गमें क्या अवस्था हो जायगी और वैसा होना वांछनीय होगा या नहीं। सेल (Sale) साहबने कुरानका जो अनुवाद किया है, उसमें एक स्थानपर लिखा है—"but that good women will go into a seperate place of happiness, where they will enjoy all sorts of delights, but whether one of those delights will be the enjoyment of agreeable paramours created for them, to complete the economy of Moha medan system, is what I thave found no where decided." (अर्थात् भली स्त्रियाँ सुख और आनन्दके एक स्वतन्त्र स्थानमें जायँगी जहाँ वे सब प्रकारके सुखों और आनन्दोंका उपभोग करेंगीं। परन्तु मुझे इस बातका कोई निर्णय कहीं नहीं मिला कि मुसलमानी व्यवस्थाकी अर्थ-नीति पूरी करनेके लिए उन सुखों और आनन्दोंमेंसे एक सुख या आनन्द यह भी होगा या नहीं कि उन्हें मनोनुकूल तथा प्रिय उपपतियोंका भी सुख प्राप्त होगा।) यदि यही हो तो इतना करनेपर भी नारियोंकी यथार्थ अवस्थाके सम्बन्धमें लोगोंमें बहुत अधिक सन्देह और मत-भेद होना विचित्र नहीं है। इसके सिवा मुहम्मद साहब ने स्वयं भी एक स्थानपर कहा है—"When he took a view of paradise he saw the majority of its inhabitants to be the poor, and when he looked down into hell, he saw the greater part of the wretches confined there to be women!" अर्थात्, जब उसने बहिश्तका नजारा देखा तब उसे मालूम हुआ कि वहाँ रहनेवालोंमें से बहुत ज्यादा लोग गरीब हैं और जब दोजख या नरककी तरफ देखा, तब पता चला कि जो कम्बख्त वहाँ बन्द हैं उनमेंसे ज्यादातर औरतें हैं।)

कुछ लोग यह समझते हैं कि संसारमें स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक हैं और इसी लिए स्वभावतः उनका हीन मूल्य निर्दिष्ट हुआ है। हम यह नहीं कहते कि ऐसा समझनेमें वे बिलकुल भूल ही करते हैं। कारण; जिन देशोंमें लोगोंने लड़ाई भिड़ाई करना ही पुरुषोंके लिए परम गौरवका विषय मान लिया है और इसी विचारसे जो बराबर लड़ाइयाँ लड़ते रहते हैं और लोक-

क्षय करके एक तरहसे अपने यहाँ स्त्रियोंका अनुपात बढ़ाते रहते हैं, उन्हीं देशोंमें नारियोंका मूल्य घटा है। यह बात ठीक होनेपर भी यह भी एक सोचने समझनेकी बात है कि वास्तवमें लड़ाईसे स्त्रियोंके अनुपातकी वृद्धि होती है या नहीं। कारण बहुतसे लोग हिसाब लगानेके समय इस बातका विचार नहीं करते कि प्रायः सभी युद्धप्रिय जातियाँ इस बातपर प्रखर दृष्टि रखती हैं कि उनके यहाँ नारियोंके अनुपातकी वृद्धि न होने पावे और इसका प्रधान उपाय है अपनी छोटी छोटी कन्याओंकी हत्या करना। प्रायः सभी आदिम असभ्य जातियाँ अपनी शिशु-कन्याओंका वध कर डाला करती थीं। हमारे यहाँके राजपूत अपनी कन्याओंको मार डाला करते थे; अरबके शेखोंके यहाँ जब लड़की पैदा होती थी, तो वे उसे जमीनमें गड्ढा खोदकर गाड़ देते थे, केंधा प्रदेशके अरब लोग पाँच वर्षकी अवस्था हो जानेपर जब अपनी कन्याकी हत्या करने लगते थे, तब उससे पहले उसकी माताको सम्बोधन करके कहते थे—"अब लड़कीको शरीरमें सुगन्धित द्रव्य लगा दो और उसका शृंगार कर दो। आज वह अपनी माँके घर जायगी!" अर्थात् आज वह कुएँमें फेंकी जायगी। कुरैशके लोग मक्केके पास अबूदेलामा नामक पहाड़पर अपनी कन्यायें वध करते थे। प्राचीन ग्रीक इतिहास-लेखक स्ट्रैबोने एक स्थान पर लिखा है, "The practice of exposing female infants, and putting them to death behing so common among the ancients that it is remarked as a thing very extra-ordinary in the Egyptians, that they brought up all ttheir children." (अर्थात्, प्राचीन जातियोंमें छोटीछोटी कन्याओंको बाहर जंगलमें फेंक देने और मार डालनेका इतना आम रिवाज था कि मिस्री लोगोंका अपने बाल-बच्चोंका पालन-पोषण करके बड़ा करना उन्हें बहुत ही असाधारण और विलक्षण जान पड़ता था।) सुनते हैं कि चीनवालोंमें अब भी यह प्रथा प्रचलित है। ग्रीक लोगोंके सम्बन्धमें पोसिडिप्पस (Posidippus) की यह उक्ति सेल (Sale) साहबने उद्धृत की है, "A men, though too poor, will not expose his son, but if he is rich, will scarce preserve his daughter." (अर्थात्, अगर कोई आदमी गरीब होगा, तो वह अपने लड़केको जंगलमें नहीं फेंकेगा। लेकिन अगर वह अमीर होगा तो शायद ही अपनी लड़कीका पालन-पोषण और रक्षण करेगा।)

इसीलिए चाहे लोग लड़ाइयाँ लड़कर खुद मरें और चाहे कन्याओंकी हत्या करें, इनसे न स्त्रियोंका अनुपात बढ़ता है और न घटता है। स्त्रियोंका सम्मान या असम्मान (मूल्य) उनके अनुपातपर निर्भर नहीं है। उनका सम्मान या मूल्य तो पुरुषोंकी इस धारणापर निर्भर है कि स्त्रियाँ सम्पत्ति हैं और केवल भोगकी वस्तु हैं। इसी लिए लोग अपनी कन्याओंका वध करते हैं, इसी लिए दूसरोंकी कन्याओंका हरण करनेकी प्रथा है। इसी लिए जब किसीकी कन्याको कोई दूसरा हर ले जाता है, तो वह अपना बहुत बड़ा गौरव समझता है और इसी लिए जब एक पुरुषके पास बहुत-सी स्त्रियाँ होती हैं, तब उन स्त्रियोंका होना उसके सम्मान और बलका चिह्न माना जाता है। बर्कहार्ट (Burckhardt) ने कहा है कि वहाबियोंमें यह धारणा आजतक इतनी प्रबल है कि जब वे यह सुनते हैं कि युरोपमें एक पुरुषकी एक ही स्त्री होती है, तब वे मारे विस्मयके अवाक् हो जाते हैं! उनके मनमें इस बातका विश्वास तक नहीं हो सकता कि ऐसी बात भी ठीक हो सकती है।

अब हम और कुछ नहीं कहेंगे। प्रबन्ध बहुत बढ़ गया है, इसलिए अब इसको समाप्त करेंगे। हम नहीं जानते कि पुरुष यह प्रबन्ध पढ़कर अपने मनमें क्या समझेंगे; लेकिन हमने निष्कपट भावसे जो कुछ सत्य समझा और माना है, स्त्रियोंका मूल्य क्यों कम हो गया है और वास्तवमें कम हुआ है या नहीं और मूल्य घटनेसे समाजमें किन अमंगलोंका प्रवेश होता है, और स्त्रियोंपर पुरुषोंके काल्पनिक अधिकारोंकी मात्रा बढ़ा देनेसे क्या अनिष्ट होता है, सो सब हमने स्वयं अपने कथनसे और दूसरोंके कथनोंकी सहायतासे बतलानेकी चेष्टा की है। बस हमने इतना ही किया है। हम इस बातका विचार करके कहीं रुक नहीं सके हैं कि हमारी इन बातोंसे शास्त्रोंका अ-सम्मान होता है या नहीं होता और देशाचारपर कटाक्ष होता है या नहीं होता। जो कुछ सत्य है, वही हम कहेंगे और वही हमने कहा भी है। अवश्य ही उसके फलाफलके विचारका भार पाठकोंपर हैं।

उपसंहारमें हरबर्ट स्पेन्सरकी भाषामें हम केवल यही बतलावेंगे कि एक दिन नर और नारीके पवित्र बन्धनकी सीमा और परिणति सम्भवतः क्या होगी और क्या होनी चाहिए—"As monogamy is likely to be raised in character, by a public sentiment requiring that the legal bond shall not be entered into unless it represents the natural bond,

perhaps it may be, that maintenance of legal bond will come to be held improper if the natural bond ceases. Already increased facilities for divorce point to the probability that whereas, while permanent monogamy was being evolved, the union by Law (originally the act of purchase) was regarded as the essential, part of marriage and the union by affection as non the-essential, and whereas at present the union by Law is though the more important and the union by affection the less improtant; there will come a time when the union by affection will be held of primary moment and the union by Law as of secondary moment; whence rcprobation of marital relations in which the union by affection has dissolved. That this conclusion will be at present un-acceptable is likely—I may say certain.....those higher sentiments accompanying union of the sexes, which do not exist among primitive men, and were less developed in early European times than now, may be expected to develop still more as decline of militancy and growth of Industrialism, foster alturism; for sympathy which in the root of alturism, is a chief element in these sentiments.

(अर्थात्, सम्भावना इसी बातकी जान पड़ती है कि सार्वजनिक भावुकताके कारण एक-पत्नी-विवाहका स्वरूप इतना उन्नत हो जायगा कि लोग यह समझने लगेंगे कि जब तक पुरुष और स्त्रीमें स्वाभाविक बन्धन न उत्पन्न हो, तब तक वे क़ानूनी बन्धनमें न पड़ें। और इसलिए कदाचित् ऐसा हो सकता है कि जिस समय दोनोंमें स्वाभाविक बन्धन न रह जायगा, उस समय केवल कानूनी बन्धनको बनाये रखना अनुचित समझा जायगा। इस समय तलाकके बारेमें जो बहुत-से सुभीते बढ़ गये हैं, उनसे इसी बातकी सम्भावना जान पड़ती है कि जिस समय स्थायी एक-पत्नी-विवाहकी प्रथाका विकास हो रहा था, उस समय कानूनके द्वारा पुरुष और स्त्रीको मिलाकर एक करना—जो मूलतः क्रयका ही कार्य था—विवाहका आवश्यक अंग समझा जाता था और प्रेमके द्वारा दोनोंका मिलकर एक होना आवश्यक समझा जाता था और चूंकि आज-कल कानूनके द्वारा दोनोंका मिलकर एक होना अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है और प्रेमके द्वारा दोनोंका मिलकर एक होना कम महवत्त्पूर्ण माना जाता है, इसलिए अब आगे चलकर एक ऐसा समय आवेगा, जब कि प्रेमके द्वारा दोनोंका मिलकर

एक होना अधिक महत्त्वका समझा जायगा और कानूनके द्वारा दोनोंका मिलकर एक होना गौण माना जायगा । इसीलिए आज-कल वे वैवाहिक सम्बन्ध निन्दनीय तथा त्याज्य समझे जाते हैं जिनमें प्रेमके द्वारा दोनोंका एकीकरण नहीं होता । अधिकतर सम्भावना इसी बातकी जान पड़ती है, बल्कि मै तो कह सकता हूँ कि यह बात निश्चित-सी जान पड़ती है कि हमने जो यह परिणाम निकाला है, उसे इस समय लोग माननेके लिए तैयार नहीं होंगे; स्त्री और पुरुषके संयोगके साथ उच्च कोटिकी जो भावनाएँ या विचार सम्बद्ध हैं और आदिम कालके मनुष्योंमें जिनका अभाव था और जो आज-कलकी अपेक्षा आरम्भिक युरोपियन कालमें कम विकसित हुए थे, उनके सम्बन्धमें यह आशा की जा सकती है कि ज्यों ज्यों युद्ध-प्रियताका ह्रास होता जायगा और शिल्पकलाकी वृद्धि होनेके कारण परोपकार तथा परामर्शका भाव लोगोंमें बढ़ता जायगा, त्यों त्यों उनका (उक्त भावनाओं तथा विचारोंका) विकास होता जायगा । इसका कारण यही है कि जो सहानुभूति परोपकार या परार्थका मूल है, वही इन भावनाओं या विचारोंका भी मूल तत्त्व है ।)

समाप्त

प्रमाण

इस निबन्धमें कई जगह प्राचीन ग्रन्थों और काव्योंके कुछ संकेत दिये हैं, पाठकोंकी विशेष जानकारीके लिए यहाँ वे विवरणसहित दिये जाते हैं—

—प्रकाशक

पृष्ठ २, पंक्ति ३०—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥

—मनुस्मृति अ० ६, श्लो० २६

अर्थात् स्त्रियाँ प्रजोत्पत्तिके लिए हैं, महाभाग्यशालिनी हैं, पूजाके योग्य हैं, घरोंकी दीप्ति हैं। घरोंमें स्त्री और श्री (शोभा) में कोई अन्तर नहीं है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

—मनु० ३—५२

अर्थात् जहाँ स्त्रियोंकी पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ नहीं होती, वहाँ सारे काम निष्फल होते हैं।

पृष्ठ ४, पंक्ति ४—

विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः॥

—मनु० ५, १५४

अर्थात् चाहे सदाचारहीन हो, चाहे कामी दुराचारी हो और चाहे गुणहीन हो, सती साध्वी स्त्रीको पतिकी सदा देवताके समान सेवा करनी चाहिए।

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पतिकर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पति-पद-प्रेमा॥

—रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड

पृष्ठ ४, पंक्ति २७—

शास्त्रोंमें आठ प्रकारके विवाह बतलाये गये हैं, जिनमें पैशाच भी एक है।

सुप्तां वाथ प्रमत्तां वा यो हृत्वाथ विवाहयेत्।
कन्यकां सोऽत्र पैशाचो विवाहः परिकीर्तितः॥

—बृहस्पतिः

अर्थात्, सोती हुई या मतवाली कन्याको हरण करके जो विवाह किया जाता है, वह पैशाच विवाह है।

पृष्ठ ५, पंक्ति १३—

महाभारतके आदि पर्व (१२५–६२) में माद्रीका अपने पति पांडुके साथ सहमरण करनेका उल्लेख है।

न स्त्रीणां पृथग्यज्ञ न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

—मनु० ५—१५५

अर्थात् स्त्रियोंके लिए न कोई जुदा यज्ञ है, न व्रत और न उपवास। यदि वे पतिकी सेवा करें तो उसीसे वे स्वर्गमें पूजी जाती हैं।

पृष्ठ ७ पंक्ति १८—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।

—मनु० ६—६६

अर्थात् स्त्रियाँ जननेके लिए बनाई गई हैं और मानव सन्तान उत्पन्न करनेके लिए।

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्॥

—मनु० ६–२७

अर्थात् सन्तान जनना, जनेहुओंका पालन करना और नित्यकी लोक-यात्रा चलाना ये स्त्रीके काम हैं।

पृष्ठ १७, पंक्ति १६—

कन्याऽप्येवं पालनीया शिक्षणीयाति यत्नतः।

अर्थात्, इसी तरह कन्याका पालन करना चाहिए और बहुत यत्नके साथ उसे शिक्षा देनी चाहिए।

पृष्ठ १६, पंक्ति २६—

औरसो धर्मपत्नीतः संजातः पुत्रिकासुतः।
क्षेत्रजः क्षेत्रजातः स्वगोत्रेतरेण वा॥

अर्थात् (दायाद और पिंड देनेवाले जो छह प्रकारके पुत्र धर्मशास्त्रोंमें बतलाये गये हैं उनमेंसे) जो धर्म-पत्नीसे उत्पन्न हुआ पुत्र है और अपनी एकमात्र कन्यासे उत्पन्न पुत्र है वह तो औरस कहलाता है और जो सगोत्री अथवा दूसरे गोत्रवालेसे अपने क्षेत्र (स्त्री) में उत्पन्न कराया जाता है वह क्षेत्रज कहलाता है।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया ।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥

—मनु० ६–५६

अर्थात् सन्तान न होनेपर सन्तानकी इच्छा करनेवाली स्त्री पतिकी अथवा गुरुजनोंकी आज्ञामें नियुक्त होकर अपने देवरसे अथवा सपिंड (कुटुम्बी) से सन्तान उत्पन्न करा ले।

पृष्ठ ३१, पंक्ति २—

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥

—हितोपदेश

अर्थात् नदियोंका, जिनके हाथमें हथियार हो उनका, नखवालोंका, सींगवालोंका, स्त्रियोंका और राजकुलके लोगोंका विश्वास नहीं करना चाहिए।

पृष्ठ ३१, पंक्ति ३—

स्त्रियश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं
देवा न जानन्ति कुतो मनुष्याः ॥

अर्थात् स्त्रीके चरित्र और पुरुषके भाग्यको देवता भी नहीं जान सकते हैं फिर मनुष्य तो जान ही कैसे सकते हैं ?

पृष्ठ ४३, पंक्ति २५—

अनावृता किल पुरा स्त्रिय आसन्वरानने ।
कामचारविहारिण्यः स्वतंत्राश्चारुहासिनि ॥
तदाप्रभृति मर्यादा स्थितेयमिति नः श्रुतम् ।

—आदिपर्व, १२२

अनुराधा

१

लड़कीकी विवाह-योग्य उमरके विषयमें जितना झूठ बोला जा सकता है उतना बोलनेके बाद भी, उसकी सीमा लाँघी जा चुकी है और ब्याह होनेकी आशा भी जाती रही है। 'मैया री मैया, यह कौन-सी बात है !', से शुरू करके आँख मिचकाकर लड़कीके लड़के-बालोंकी गिनती पूछनेमें भी अब किसीको रस नहीं मिलता, समाजमें यह मजाक भी फिजूल-सा समझा जाने लगा है। ऐसी दशा है बेचारी अनुराधाकी; और मजा यह है कि घटना कोई पुराने जमानेकी नहीं बल्कि बिलकुल आधुनिक युगकी है। ऐसे जमानेमें भी सिर्फ देन-देहज, पत्रा-जन्मपत्री और कुलशीलकी जाँच-पड़ताल करते करते ऐसा हुआ कि अनुराधाकी उमर तेईस पार कर चुकी, फिर भी उसके लिए वर नहीं मिला,—इस बातपर चटसे विश्वास नहीं होता, फिर भी घटना बिलकुल सच है। आज सबेरे भी गाँवके जमींदारकी कचहरीमें इस बातकी चर्चा हो रही थी। नये जमींदारका नाम है हरिहर घोषाल, कलकत्तेके रहनेवाले हैं। उनका छोटा लड़का विजय गाँव देखने आया है। विजयने मुँहका चुरुट नीचे रखकर पूछा, "क्या कहा गगन चटर्जीकी बहनने ? मकान नहीं छोड़ेगी ?"

जो आदमी खबर लाया था, उसने कहा, "कहा कि जो कुछ कहना है, छोटे बाबू आयेंगे, तब उन्हींसे कहूँगी।"

विजयने क्रोधित होकर कहा, "उसे कहना क्या है ? इसके मानी यह हुए कि उन लोगोंको निकाल बाहर करनेके लिए खुद मुझे जाना पड़ेगा ? आदमियोंसे काम नहीं होगा ?"

वह आदमी चुप रहा, विजयने फिर कहा, "कहने-सुननेकी इसमें कोई बात नहीं विनोद,—मैं कुछ भी नहीं सुननेका। फिर भी इसके लिए मुझे ही जाना होगा उसके पास—वह खुद आकर अपनी तकलीफ बयान नहीं कर सकती ?"

विनोदने कहा—"मैंने यह कहा भी था। अनुराधाने कहा कि मैं भी भद्र घरानेकी लड़की हूँ विनोद-भइया, घर छोड़कर अगर बाहर निकल ही

जाना है, तो उन्हें जताकर एकबारगी ही निकल जाऊँगी, बार-बार बाहर नहीं निकल सकती।"

"क्या नाम बताया तुमने अनुराधा? नाम तो बड़ा चटकदार है,—इसीसे शायद अभी तक अहंकार नहीं मिटा?"

"जी नहीं।"

विनोद गाँवका आदमी है, अनुराधाकी दुर्दशाका इतिहास वही बतला रहा था। परन्तु अनतिपूर्व इतिहासका भी एक अतिपूर्व इतिहास होता है,—वही अब कहा जाता है।

गाँवका नाम है गणेशपुर। किसी दिन यह अनुराधाके पुरखोंका ही था। पाँच-छै साल हुए, दूसरेके हाथ चला गया है। इस जायदादका सालाना मुनाफा दो हजारसे ज्यादा नहीं है, किन्तु अनुराधाके पिता अमर चटर्जीका चाल-चलन या रहन-सहन था बीस हजार जैसा। लिहाजा कर्जके मारे रहनेके मकान तक पर डिक्री हो गई। डिक्री तो हो गई पर वह जारी नहीं हो सकी,—महाजन डरके मारे रुका रहा। चट्टोपाध्यायजी जैसे बड़े कुलीन थे, वैसे ही उनके जप-तप और क्रिया-कर्मकी भी काफी प्रसिद्धि थी। फूटे तलेकी गृहस्थीकी नाव अपव्ययके खारी पानीसे मुँह तक भर आई, पर डूबी नहीं। हिन्दू-कट्टरताके फूले हुए पालमें सर्वसाधारणकी भक्ति और श्रद्धाकी आँधीकी-सी हवाने इस डूबती हुई नावको ढकेलते-ढकेलते आखिर अमर चटर्जीकी आयुकी सीमा तो पार कर ही दी। अतएव उनका जीवन-काल एक तरहसे अच्छा ही बीता। वे मरे भी ठाट-बाटके साथ और उनकी श्रद्ध-शान्ति भी ठाठ-बाटके साथ हुई, मगर साथ ही जायदादका खातमा भी यहीं हो गया। इतने दिनोंसे जो नाव सिर्फ नाक बाहर निकाले किसी कदर साँसें ले रही थी, अब उसे 'बाबू-घराने' की सारी इज्जत-आबरू लेकर अथाह पानीमें डूबनेमें जरा भी देर न लगी।

पिताकी मृत्युके बाद पुत्र गगनको एक टूटा-फूटा पुराना डिक्री-शुदा पैतृक मकान मिला, गले तक कर्जसे जकड़ी हुई गाँवकी सम्पत्ति मिली, कुछ गाय-बकरी-कुत्ते-बिल्ली आदि जानवर मिले; और सिरपर आ पड़ी पिताकी दूसरी स्त्रीकी कुँवारी कन्या अनुराधा।

उसके लिए वर भी जुट गया, गाँवका ही एक भद्र पुरुष। पाँच-छः लड़के-बाले और नाती पोते छोड़कर उसकी स्त्री मर चुकी है, अब वह ब्याह करना चाहता है।

अनुराधाने कहा, "भइया, भाग्यमें राजपुत्र तो बदा नहीं, तुम वहीं मुझे ब्याह दो। रुपयेवाला आदमी ठहरा, कमसे कम खाने-पहरनेको तो मिलेगा ही।"

गगनने आश्चर्यके साथ कहा, "यह कैसी बात है! माना कि त्रिलोचनके पास पैसा है, मगर उसके बाबाने कुल बिगाड़कर सतीपुरके चक्रवर्तियोंके घर ब्याह किया था, जानती है? उन लोगोंकी इज्जत क्या है?"

बहनने कहा, "और कुछ हो या न हो, रुपये तो हैं। कुल लेकर उपवास करनेकी अपेक्षा मुट्ठी-भर दाल-भात मिल जाना कहीं अच्छा है भइया।"

गगनने सिर हिलाते हुए कहा, "ऐसा नहीं होता, —हो नहीं सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता, बताओ तो? बाबूजी इन सब बातोंको मानते थे, मगर तुम्हारे तो इसकी कोई बला ही नहीं।"

यहाँ यह कह देना जरूरी है कि पिताकी कट्टरता पुत्रमें नहीं है। मद्य-मांस तथा और भी आनुषंगिक विषयोंमें वह बिलकुल मोह-मुक्त पुरुष है। पत्नी-वियोगके बाद दूसरे गाँवकी कोई एक नीच-जातकी स्त्री आज भी उसका वह अभाव दूर कर रही है, और इस बातको सभी जानते हैं।

गगन उसके इशारेको समझ गया, गरजकर बोला, "मुझमें फजूलकी कट्टरता नहीं, पर कन्यागत कुलके शास्त्राचारको क्या तेरे लिए तिलांजलि देकर अपनी चौदह पीढ़ियोंको नरकमें डुबो दूँ? कृष्णकी सन्तान हैं हम, स्वभाव-कुलीन,—जा जा, ऐसी गंदी बातें अब कभी मुँहसे न निकालना!" यह कहकर वह गुस्सा होकर चला गया। त्रिलोचन गंगोपाध्यायका प्रस्ताव यहीं दब गया।

गगनने हरिहर घोषालकी शरण ली,—कुलीन ब्राह्मणको ऋणमुक्त करना ही होगा। कलकत्तेमें लकड़ीके व्यापारमें हरिहर लखपती धनी हो गये हैं। किसी दिन उनकी ननसाल इसी गाँवमें थी, बचपनमें इन बाबुओंके सुदिन उन्होंने अपनी आँखोंसे देखे हैं, बहुतसे मौकोंपर उन्होंने पेट भरके पूड़ी-मिठाइयाँ भी खाई हैं, रुपया उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं, इसलिए वे राजी हो गये। चटर्जियोंका सबका सब ऋण चुकाकर हरिहरने गणेशपुर खरीद लिया, कुण्डुओंको डिक्रीका रुपया देकर उनके रहनेका मकान वापस ले लिया; सिर्फ मौखिक शर्त यह रही कि बाहरके दो-तीन कमरे कचहरीके लिए छोड़कर भीतरकी तरफ गगन जैसे रहता है, उसी तरह रहा करेगा।

जमींदारी खरीद ली गई, पर प्रजाने नये जमींदारकी अधीनता मानना

नहीं चाही। जायदाद छोटी है, वसूली भी मामूली है, इसलिए बड़े पैमानेमें कोई इन्तजाम किया नहीं जा सकता; मगर इस थोड़ेमें ही गगन ऐसा कौशल करने लगा कि हरिहरके पक्षका कोई भी कर्मचारी गणेशपुरमें न टिक सका। अन्तमें गगन अपने ही प्रस्तावके अनुसार आप कर्मचारी नियुक्त हुआ। अर्थात् भूत-पूर्व भूस्वामी वर्तमान जमींदारका गुमाश्ता बन गया। उसने प्रजाको वशमें कर लिया, हरिहरका जीमें जी आया; परन्तु वसूलीकी दिशामें वही रफ्तार रही जो पहले थी। एक पैसा रोकड़में जमा नहीं हुआ। इसी तरह गड़बड़ीमें और भी दो साल बीत गये; उसके बाद अचानक एक दिन खबर मिली कि गुमाश्ता गगन चटर्जीका पता नहीं लग रहा है! शहरसे हरिहरके आदमीने आकर सब जाँच-पड़ताल करके मालूम किया कि वसूल जो कुछ हो सकता था, हुआ है, और उसे गगन चटर्जी हड़प करके लापता हो गया है। थानेमें डायरी, अदालतमें नालिश और खानातलाशी जो कुछ भी कार्रवाई होनी चाहिए थी, वह सब की गई, मगर रुपया और गगन दोनोंमेंसे किसीका भी पता न चला। गगनकी बहन अनुराधा और उसका दूरके नातेका एक बहनौत बच्चा घरमें रहता था। पुलिसके आदमियोंने इन दोनोंको यथानियम घसा-माँजा और हिलाया-डुलाया, पर कोई भी तथ्य न निकला।

विजय विलायत हो आया है। उसके बार-बार परीक्षा फेल करनेसे हरिहरको रसदके लिए बहुत रुपये खर्च करने पड़े हैं। पास वह नहीं कर सका, पर विज्ञताके फल-स्वरूप मिजाज गरम करके दो साल पहले वह देश लौटा है। विजयका कहना है कि विलायतमें पास-फेलमें कोई प्रभेद ही नहीं। किताबें रटकर तो गधा भी पास कर सकता है, वैसा उद्देश्य होता तो वह यहीं बैठकर किताबें रटा करता, विलायत नहीं जाता। घर आकर उसने पिताके लकड़ीके व्यापारकी काल्पनिक दुरवस्थाकी आशंका प्रकट की, और डूबते-डगमगाते हुए व्यापारको मैनेज करनेमें लग गया। कर्मचारियोंमें इसी दरमियान उसका नाम हो गया है—मुनीम गुमाश्ते उससे शेरकी तरह डरते हैं। कामके मारे जब कि उसे साँस लेनेकी भी फुरसत नहीं थी, तब गणेशपुरका वर्णन उसके सामने आ पहुँचा। उसने कहा—यह तो जानी हुई बात है। पिताजी जो कुछ करेंगे, सो ऐसा ही होगा। मगर और कोई उपाय नहीं, लापरवाही करनेसे काम नहीं चलनेका। उसे सरे-जमीन खुद जाकर कोई इन्तजाम करना ही पड़ेगा। इसी लिए वह गणेशपुर आया है। मगर इस छोटेसे कामके लिए

ज्यादा दिन गाँवमें नहीं रहा जा सकता, जितना जल्दी हो सके, इसका कोई इन्तजाम करके उसे कलकत्ते लौट जाना है। सब कुछ उसके अकेलेके ही सिर है। बड़े भाई अजय अटर्नी हैं अत्यन्त स्वार्थी, अपने आफिस और स्त्री-पुत्रोंको लेकर व्यस्त रहते हैं,—गृहस्थीकी सभी बातोंमें अन्धे हैं, बस एक हिस्सा-बाँटके बारेमें ही उनकी दस-दस आँखें काम करती हैं। उनकी स्त्री प्रभामयी कलकत्ता युनिवर्सिटीकी ग्रेजुएट हैं,—घरवालोंकी खबर-सुध लेना तो दूर रहा, सास-ससुर जिन्दे हैं या नहीं, इतनी खबर रखनेकी भी उन्हें फुरसत नहीं। पाँच-छै कमरे लेकर मकानके जिस हिस्सेमें वे रहते हैं, वहाँ परिवारके लोगोंका जाना-आना संकुचित है; उनके नौकर-चाकर अलग हैं, उड़िया बेहरा है, केवल बड़े बाबूकी मनाही होनेसे आजतक मुसलमान बावर्ची नहीं रख सके हैं। यह कमी प्रभाको कष्ट पहुँचाती है। पर उसे आशा है कि ससुरके मरते ही इसका प्रतीकार हो जायगा। देवर विजयके प्रति उसकी हमेशासे अवज्ञा रहती आई है, सिर्फ, इधर कुछ दिनोंसे, विलायत घूम आनेसे उसके मनोभावमें कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगा है दो-चार दिन उसने न्यौता देकर उसे अपने हाथसे राँध-बनाकर डिनर खिलाया है, और उस मौकेपर अपनी बहन अनीतासे विजयका परिचय भी करा दिया है। वह अबकी बार बी० ए० में ऑनर्स पास करके एम० ए०में पढ़नेकी तैयारियाँ कर रही है।

विजय विधुर है। स्त्री मर जानेके बाद ही वह विलायत चला गया था। वहाँ क्या किया, क्या नहीं किया; इसकी खोज करनेकी जरूरत नहीं: पर लौटनेके बाद बहुत दिनोंतक देखा गया है कि स्त्री-जाति के सम्बन्धमें उसका मिजाज कुछ रूखा-रूखा-सा रहता है। माने ब्याह करनेके लिए कहा तो उसने तेज गलेसे प्रतिवाद करके उन्हें ठंडा कर दिया, तबसे आज तक वह मामला दबा ही पड़ा है।

गणेशपुर आकर उसने एक प्रजाके मकानमें बाहरके दो कमरे लेकर उनमें नई कचहरी कायम कर दी है। सरिश्तेके कागजात जितने भी गगनके घर मिल सके, सब जबरदस्ती यहाँ उठा लाये गये हैं, और अब इस बातकी कोशिश हो रही है कि उसकी बहन अनुराधा और उसके दूरके नातेका बहनौत घरसे निकाल बाहर किया जाय। विनोद घोषके साथ अभी अभी इसी बातकी सलाह हो रही थी।

कलकत्तेसे यहाँ आते समय विजय अपने सात-आठ सालके लड़के कुमारको साथ लेता आया है।

गँवई-गाँवमें साँप-बिच्छू आदिके डरसे माने आपत्ति की थी, पर विजयने कह दिया कि मा, तुम्हारी बड़ी बहूके प्रसादसे तुम्हारे लड्डू-गोपाल पोते-पोतियोंकी कमी नहीं है,—कम से-कम इसे वैसा मत बनाओ। इसे आफत-विपदमें पड़कर आदमी बनने दो।

सुनते हैं कि विलायतके साहब लोग भी ठीक ऐसी ही बात कहा करते हैं। मगर साहबोंकी बातके अलावा भी यहाँ जरा कुछ पोशीदा मामला है। विजय जब विलायतमें था, तब इस मातृहीन बालकके दिन बिना किसी आदर-जतनके ही कटे हैं। कुमारकी दादी अकसर खाटपर पड़ी रहती हैं, लिहाजा काफी धन-वैभव होते हुए भी उसे देखने-भालनेवाला कोई न था; और इसीलिए बेचारा तकलीफोंमें ही इतना बड़ा हुआ है। विलायतसे वापस आनेपर यह बात विजयको मालूम हो गई है।

गणेशपुर आते समय विजयको भाभीने सहसा हमदर्दी दिखाकर कहा था, "लड़केको साथ लिये जा रहे हो लालाजी, गँवई-गाँवकी नई जगह ठहरी, जरा सावधानीसे रहना। लौटोगे कब तक?"

"जितनी जल्दी बन सका।"

"सुना है अपना वहाँ एक मकान भी है,—बाबूजीने खरीदा था?"

"खरीदा जरूर था, पर खरीदनेके मानी ही 'होना' नहीं है। भाभी, मकान है, पर उसपर अपना दखल नहीं।"

"लेकिन अब तो तुम खुद जा रहे हो लालाजी, अब दखल होनेमें देर नहीं लगेगी।"

"उम्मीद तो यही करता हूँ।"

"दखल होनेपर जरा खबर भिजवा देना।"

"क्यों भाभी?"

इसके उत्तरमें प्रभाने कहा था, "पास ही तो है, गँवई-गाँव कभी आँखसे देखा नहीं, जाकर किसी दिन देख आऊँगी। अनीताका भी कॉलेज बन्द है, वह भी संग जाना चाहेगी।"

इस प्रस्तावपर विजयने अत्यन्त पुलकित होकर कहा था, "दखलमें आते ही मैं तुम्हे खबर भेज दूँगा भाभी, तब लेकिन 'ना' नहीं कर सकोगी। अपनी बहनको भी जरूर साथ लाना होगा।"

अनीता युवती है, देखनेमें भी सुन्दर है, और ऑनर्सके साथ बी० ए० पास भी। साधारण स्त्री-जातिके विरुद्ध विजयकी बाहरी अवज्ञा होनेपर भी एक खास रमणीके प्रति भी—एक साथ इतने गुण मौजूद होते हुए भी—वह इस तरहकी धारणा रखता हो, सो बात नहीं। वहाँ शान्त ग्रामके निर्जन प्रान्तरमें—और कभी प्राचीन वृक्षोंकी छायासे शीतल संकीर्ण ग्राम्य पथपर एकान्तमें सहसा उसके सामने आ पड़नेकी सम्भावना उसके मनमें उस दिन बार-बार झूलेकी-सी रमक पैदा कर रही थी।

१

विजय ठेठ विलायती पोशाक पहने, सिरपर हैट, मुँहमें कड़ा चुरुट और जेबमें रिवालवर लिये, चेरीकी छड़ी घुमाता हुआ बाबू-घरानेके सदर मकानमें जा घुसा। साथमें थे दो लठैत मिर्जापुरी दरवान, कुछ अनुयायी प्रजा, विनोद घोष और पुत्र कुमार। जायदाद दखल करनेमें यद्यपि दंगा-हंगामेका डर है, फिर भी लड़केको लड्डू-गोपाल बना देनेके बजाय मजबूत और साहसी बनानेके लिए यह बड़ी शिक्षा है: इसलिए लड़का भी साथ आया है। मगर विनोद बराबर भरोसा देता आ रहा है कि अनुराधा अकेली और आखिर औरत ही ठहरी: वह जोर जबरईमें हरगिज नहीं जीत सकती। फिर भी रिवालवर जब कि मौजूद है, तो साथ ले लेना ही अच्छा है।

विजयने कहा, "सुना है कि वह लड़की शैतान है, चटसे आदमी इकट्ठे कर लेती है और वही गगनकी सलाहकार थी। स्वभाव चरित्र भी ठीक नहीं।"

विनोदने कहा, "जी नहीं, ऐसा तो नहीं सुना।"

"मैंने सुना है।"

कहीं कोई नहीं था, विजय सुन-सान आँगनमें खड़ा होकर इधर-उधर देखने लगा। हाँ, है तो बाबुओं जैसा मकान! सामने पूजाका दालान है, अभी तक टूटा-फूटा नहीं है, परन्तु जीर्णताकी सीमापर पहुँच चुका है। एक तरफ सिलसिलेवार बैठनेके कमरे और बैठकखाना है—दशा सबकी एक-सी है। कबूतर, चिड़ियों और चमगादड़ोंने स्थायी आश्रय बना रक्खा है।

दरवानने आवाज दी, "कोई है?"

उसके मर्यादाशून्य ऊँचे स्वरके चीत्कारसे विनोद घोष तथा और सब

मारे लज्जाके संकुचित-से हो गये। विनोदने कहा, "राधा जीजीको मैं जाकर खबर दिये आता हूँ बाबू साहब।" कहकर वह भीतर चला गया।

उसके कंठ-स्वर और बात करनेके ढँगसे जान पड़ता है कि अब भी इस मकानका असम्मान करनेमें उसे संकोच होता है।

अनुराधा रसोई बना रही थी। विनोदने जाकर विनयके साथ कहा, "जीजी, छोटे बाबू आये हैं, बाहर खड़े हैं।"

इस दुर्दैवकी वह प्रति दिन आशंका कर रही थी, हाथ धोकर उठके खड़ी हो गई, और संतोषको पुकार कर बोली, "बाहर एक दरी बिछा आ बेटा, और कहना मौसी अभी आती है।" फिर विनोदसे बोली, "मुझे ज्यादा देर न होगी,—बाबू नाराज न हो जाँय विनोद भइया, मेरी तरफसे जरा उन्हें बैठनेको कह दो।"

विनोदने लज्जित मुखसे कहा, "क्या करूं जीजी, हम लोग गरीब रिआया ठहरे, जमीदार हुकुम देते हैं तो 'ना' नाहीं कर सकते, इसीसे—"

"सो मैं जानती हूँ विनोद-भइया।"

विनोद चला गया। बाहर दरी बिछा दी गई पर कोई उसपर बैठा नहीं। विजय छड़ी घुमाता हुआ टहलने और चुरुट फूँकने लगा।

पाँच मिनट बाद संतोषने दरवाजेके बाहर आकर दरवाजेकी ओर इशारा करके डरते डरते कहा, "मौसीजी आई हैं।"

विजय ठिठककर खड़ा हो गया। शरीफ घरानेकी लड़की ठहरी, उसे क्या कहकर संबोधन करना चाहिए, वह दुबिधामें पड़ गया। मगर अपनी कमजोरी जाहिर करनेसे काम न चलेगा, लिहाजा पुरुष-कंठसे उसने अन्तरालवर्तिनीकी तरफ लक्ष्य करके कहा, "यह मकान हम लोगोंका है, सो तो तुम जानती हो?"

उत्तर आया, "जानती हूँ।"

"तो फिर खाली क्यों नहीं कर रही हो?"

अनुराधाने पूर्ववत् ओटमेंसे बहनौतकी जबानी अपना वक्तव्य कहलानेकी कोशिश की; परन्तु लड़का एक तो चालाक-चतुर न था, दूसरे नये जमींदारके कड़े मिजाजकी बात भी उसके कानमें पड़ गई थी, इसलिए डरके मारे वह घबरा गया, एक भी शब्द उससे साफ-साफ कहते नहीं बना। विजयने पाँच-छै मिनट तक धीरज धरके समझानेकी कोशिश की, फिर सहसा डपट कर बोल उठा, "तुम्हारी मौसीको जो-कुछ कहना हो, सामने आकर कहे। नष्ट करने

लायक समय मेरे पास नहीं है,—मैं कोई भालू-चीता नहीं हूँ जो उसे खा जाऊँगा। मकान क्यों नहीं छोड़ती, सो बताओ ?"

अनुराधा बाहर नहीं आई, उसने वहींसे बात की। सन्तोषके मार्फत नहीं, अपने ही मुँहसे साफ-साफ कहा, "मकान छोड़नेकी बात नहीं हुई थी। आपके पिता हरिहर बाबूने कहा था,—इसके भीतरके हिस्सेमें हम लोग रह सकेंगे।"

"कोई लिखा-पढ़ी है ?"

"नहीं, लिखा-पढ़ी कुछ नहीं है। मगर वे तो अब भी मौजूद हैं, उनसे पूछनेपर मालूम हो जायगा।"

"पूछनेकी मुझे कोई गरज नहीं है। यह शर्त उनसे लिखवा क्यों नहीं ली थी ?"

"भइयाने इसकी ज़रूरत नहीं समझी थी। उनके मुँहकी बातसे लिखा-पढ़ी बड़ी हो सकती है, यह बात शायद भइयाको मालूम नहीं होगी !"

इस बातका कोई संगत उत्तर न सूझनेसे विजय चुप रह गया। परन्तु दूसरे ही क्षण भीतरसे जवाब आया।

अनुराधाने कहा, "लेकिन खुद भइयाकी तरफसे शर्त टूट जानेसे अब तो सभी शर्तें टूट गईं। इस मकानमें रहनेका अधिकार अब हमें नहीं रहा। मगर, मैं अकेली स्त्री ठहरी, और यह अनाथ बच्चा है। इसके माँ-बाप नहीं हैं, मैंने ही इसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। हमारी इस दुर्दशापर दया करके अगर आप दो-चार दिन यहाँ न रहने देंगे, तो अकेली मैं अचानक कहाँ चली जाऊँ, यही सोच रही हूँ।"

विजयने कहा, "इस बातका जवाब क्या मुझको देना होगा ? तुम्हारे भाई साहब कहाँ हैं ?"

उसने जवाब दिया, "मैं नहीं जानती कहाँ हैं। और, आपके साथ जो अब तक मैं भेंट न कर सकी, सो केवल इस डरसे कि कहीं आप नाखुश न हो जायँ।" इतना कहकर क्षण-भर चुप रहकर शायद उसने अपनेको सँभाल लिया; फिर कहने लगी—

"आप मालिक हैं, आपसे कुछ भी छिपाऊँगी नहीं। अपनी विपत्तिकी बात साफ-साफ आपसे कह दी है,—वरना एक दिन भी इस मकानमें जबरदस्ती रहनेका दावा मैं नहीं रखती। कुछ दिन बाद खुद ही चली जाऊँगी।"

उसके कंठ-स्वरसे, बाहरसे ही समझमें आ गया कि उसकी आँखोंमें आँसू भर आये हैं। विजय दुःखित हुआ, और मन ही मन खुश भी हुआ।

उसने सोचा था, इसे बेदखल करनेमें न जाने कितना समय और कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ेगी; मगर वह सब कुछ भी नहीं हुआ, उसने तो आसुओंसे केवल भीख-सी माँग ली। उसकी जेबकी पिस्तौल और दरवानोंकी लाठियाँ भीतर ही भीतर उसीको लानत देने लगीं:—मगर अपनी कमजोरी भी जाहिर नहीं की जा सकती। उसने कहा, "रहने देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं थी, लेकिन मकान मुझे अपने लिए चाहिए है। जहाँ हूँ, वहाँ बड़ी दिक्कत होती है: इसके सिवा हमारे घरकी स्त्रियाँ भी एक बार देखनेके लिए आना चाहती हैं।"

लड़कीने कहा, "अच्छी बात है, चली आयें न। बाहरके कमरोंमें आप आरामसे रह सकते हैं: और भीतर दुमंजिलेपर बहुतसे कमरे हैं। स्त्रियाँ आरामसे रह सकती हैं, कोई तकलीफ़ न होगी। और परदेशमें उन्हें भी तो यहाँका कोई जानकार चाहिए, सो मैं उनको बहुत-कुछ सहारा पहुँचा सकती हूँ।"

अबकी बार विजय लज्जित होकर आपत्ति जताता हुआ बोला, "नहीं नहीं, ऐसा भी कहीं होता है! उनके साथ आदमी वगैरह सभी आयेंगे, तुम्हें कुछ न करना होगा। पर भीतरके कमरे क्या मैं एक बार देख सकता हूँ?"

उत्तर मिला, "क्यों नहीं देख सकते, है तो यह आपहीका मकान। आइए।"

भीतर घुसकर विजयने पल भरके लिए उसका सारा चेहरा देख लिया। माथेपर पल्ला है, पर घूँघट नहीं। अध-मैली मामूली धोती पहने है, गहना कुछ भी नहीं, केवल दोनों हाथोंमें सोनेकी चूड़ियाँ पड़ी हैं—पुराने जमानेकी। ओटमेंसे उसका अश्रुसिंचित स्वर विजयको अत्यन्त मधुर मालूम हुआ था: उसने सोचा था शायद वह भी वैसी होगी। खासकर गरीब होनेपर भी, वह बड़े घरकी लड़की ठहरी। मगर देखनेपर उसकी आशाके अनुरूप उसमें कुछ भी नहीं मिला। रंग गोरा नहीं, मँजा हुआ साँवला, बल्कि जरा कालेकी तरफ झुका हुआ ही समझिए। साधारण गाँवकी लड़कियाँ दिखनेमें जैसी होती हैं, वैसी ही है। शरीर कृश, छरछरा, लेकिन काफी गठा हुआ मालूम होता है। इसमें कोई शक नहीं कि बैठे बैठे या सोये सोये उसके दिन नहीं बीते। केवल उसमें एक विशेषतः दिखाई दी, उसके ललाटपर,—आश्चर्यजनक निर्दोष सुन्दर गठन है।

लड़कीने कहा, "विनोद-भइया, बाबू साहबको तुम सब दिखा-भला दो, मैं रसोई-घरमें हूँ।"

"तुम साथ नही रहोगी, राधा जीजी?"

"नहीं।"

ऊपर जाकर विजयने घूम-फिरकर सब देखा-भाला। बहुत-से कमरे हैं। पुराने जमानेका बहुत-सा असबाब अब भी हर कमरेमें कुछ न कुछ पड़ा हुआ है—कुछ टूट-फूट गया है और कुछ टूटने-फूटनेकी राह देख रहा है। अब उसकी कीमत मामूली ही समझिए, मगर किसी दिन थी जरूर। बाहरके कमरोंकी तरह ये कमरे भी जीर्ण शीर्ण हैं, जैसे हड्डियाँ निकली आ रही हों! गरीबीकी छाप सभी चीजोंपर गहराईके साथ पड़ी हुई है।

विजयके नीचे उतर आनेपर अनुराधा रसोई-घरके दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गई। गरीब और बुरी हालतमें होनेपर भी वह भले घरकी लड़की ठहरी, इसलिए विजयको अब 'तुम' सम्बोधन करनेमें शरम मालूम हुई, उसने कहा, "आप इस मकानमें और कितने दिन रहना चाहती हैं?"

"ठीक-ठीक तो अभी बता नहीं सकती; जितने दिन आप कृपा करके रहने दें।"

"कुछ दिन रहने दे सकता हूँ, मगर ज्यादा दिन तो नहीं दे सकता। तब फिर आप कहाँ जायँगी?"

"यही तो दिन-रात सोचा करती हूँ।"

"लोग कहते हैं कि आप गगनका पता जानती हैं?"

"वे और क्या क्या कहते हैं?"

विजय इस प्रश्नका उत्तर न दे सका। अनुराधा कहने लगी, "मै नहीं जानती, यह तो आपसे पहले ही कह चुकी हूँ। मगर जानूँ भी, तो क्या भाईको पकड़ा दूँ, यही आपकी आज्ञा है?"

उसके स्वरमें तिरस्कारका पुट था। विजय अत्यन्त लज्जित हो गया। समझ गया कि आभिजात्यकी छाप इसके मनसे अब तब मिटी नहीं है। बोला, "नहीं, इस कामके लिए मैं आपसे नहीं कहूँगा,—हो सका, तो मैं खुद ही उसे खोज निकालूँगा, भागने नहीं दूँगा। मगर एक बात है, इतने दिनोंसे जो वह हमारा सत्यानाश कर रहा था, सो भी क्या आप कहना चाहती हैं कि आपको नहीं मालूम था?"

कोई जवाब नहीं आया । विजय कहने लगा, "आखिर संसारमें कृतज्ञता नामकी भी कोई चीज होती है ? अपने भाईको क्या किसी दिन इस बातकी सलाह आप न दे सकीं ? मेरे पिता बिलकुल सीधे-सादे आदमी हैं, आपके वंशसे उन्हें काफी ममत्व है, और विश्वास भी खूब था, इसीसे गगनपर उन्होंने सब कुछ सौंप रक्खा था,—उसका क्या यही बदला है ? लेकिन आप निश्चित समझ लीजिए कि मैं देशमें रहता, तो हरगिज ऐसा न होने देता ।"

अनुराधा चुप थी, और चुप ही रही । किसी भी बातका जवाब न पाकर विजय मन ही मन फिर गरम हो उठा । उसके मनमें जो भी कुछ थोड़ी करुणा उत्पन्न हुई थी, सब उड़ गई । वह कठोर होकर कहने लगा, "इस बातको सभी जानते हैं कि मैं कड़ा हूँ, फजूलकी दया-माया मैं नहीं करता, कसूर करके मेरे हाथसे कोई भी बच नहीं सकता,—भाईसाहबसे मुलाकात होनेपर कमसे कम आप इतना उनसे कह दीजिएगा ।"

अनुराधा पूर्ववत् मौन ही रही । विजय कहने लगा, "आजसे सारा मकान मेरे दखलमें आ गया । बाहरके कमरोंकी सफाई हो जानेपर दो-तीन दिन बाद यहीं चला आऊँगा, स्त्रियाँ, उसके बाद आयेंगी । आप नीचेके एक कमरेमें रहिए—जब तक कि आप और कहीं न जा सकें । मगर कोई चीज-वस्त हटानेकी कोशिश न कीजिएगा ।"

इतनेमें कुमार बोल उठा, "बापूजी प्यास लगी है, पानी पीऊँगा ।"

"यहाँ पानी कहाँ है ?"

अनुराधाने हाथके इशारेसे उसे अपने पास बुला लिया, और रसोईके भीतर ले जाकर कहा, "डाभ (कच्चा नारियल) है, पीओगे बेटा ?"

"हाँ, पीऊँगा ।"

सन्तोषके बना देनेपर उसने पेट भरके उसका पानी पीया, और कच्ची गरी निकाल कर खाई । बाहर आकर बोला, "बापूजी, तुम पीओगे ? बड़ा मीठा है ।"

"नहीं ।"

"पीओ न बापूजी, बहुत हैं । अपने ही तो हैं सब ।"

बात कोई ऐसी नहीं थी, फिर भी इतने आदमियोंके बीच लड़केके मुँहसे ऐसी बात सुनकर सहसा वह शरमिन्दा-सा हो गया । बोला, "नहीं, नहीं पीऊँगा, तू चल ।"

३

बाबुओंके मकानका सदर अधिकार करके विजय जमके बैठ गया। दो कमरे उसने अपने लिए रक्खे और बाकी कमरोंमें कचहरी कर दी। विनोद घोष किसी जमानेमें जमींदारी सरिश्तेमें काम कर चुका था, उसी बूतेपर वह नया गुमाश्ता नियुक्त हो गया। परन्तु झंझट नहीं मिटी। इसका मुख्य कारण यह था कि गगन चटर्जी रुपये वसूल करके हाथके हाथ रसीद देना अपमानकारक समझता था; क्योंकि उसमें अविश्वासकी बू आती है, जो कि चटर्जी-वंशके लिए गौरवकी बात नहीं। इसलिए, उसके अन्तर्धानके बाद प्रजा आफतमें फँस गई है,—मौखिक साक्षी और प्रमाण ले-लेकर लोग रोज ही हाजिर हो रहे हैं, रोते-झींकते हैं,—किसने कितना दिया और किसपर कितना बाकी है, इसका निर्णय करना एक कष्टसाध्य और जटिल प्रश्न हो गया है। विजय जितनी जल्दी कलकत्ता लौटनेकी सोचकर आया था, उतनी जल्दी न जा सका। एक दिन, दो दिन करते-करते दस-बारह दिन बीत गये।

इधर लड़केकी हो गई है सन्तोषसे मित्रता,—उमरमें वह दो-तीन साल छोटा है, सामाजिक और गार्हस्थिक पार्थक्य भी बहुत बड़ा है, परन्तु अन्य किसी साथीके अभावमें वह उसीके साथ हिल-मिल गया है। उसीके साथ वह रहता है, घरके भीतर। बाग-बगीचों और नदी-किनारे घूमा-फिरा करता है—कच्चे आम और चिड़ियोंके घोंसलोंकी खोजमें। सन्तोषकी मौसीके पास ही अकसर खा-पी लिया करता है, और सन्तोषकी देखादेखी वह भी 'मौसीजी' कहा करता है। विजय रुपये-पैसेके हिसाबके झंझटमें बाहर ही फँसा रहता है, जिससे हर वक्त वह लड़केकी खोज-खबर नहीं ले सकता; और जब खबर लेनेकी फुरसत मिलती है, तो उसका पता नहीं लगता। सहसा कभी किसी दिन डाँट-फटकार लगाकर उसे पास बैठा भी रखता है, तो छुटकारा पाते ही वह दौड़कर मौसीजीके रसोईघरमें जा घुसता है। सन्तोषके साथ बैठकर दोपहरको दाल-भात खाता है, और शामको रोटी और गरीके लड्डू।

उस दिन शामको लोग-बाग कोई आये नहीं थे; विजयने चाय पीकर चुरुट सुलगाते हुए सोचा, चलें, नदी-किनारे घूम आयें। अचानक याद

उठ आई, दिन-भरसे आज लड़का नहीं दिखाई दिया। पुराना नौकर खड़ा था, उससे पूछा, "कुमार कहाँ है रे?"

उसने इशारेसे दिखाते हुए कहा, "भीतर।"

"रोटी खाई थी आज?"

"नहीं।"

"जबरदस्ती पकड़के खिला क्यों नहीं देता?"

"यहाँ खाना जो नहीं चाहता मालिक, गुस्सा होकर फेंक-फाँककर अलग कर देता है।"

"कलसे मेरे साथ उसे खाने बैठाना।" यह कहकर न जाने क्या मनमें आई कि वह टहलने जानेके बजाय सीधा भीतर चला गया। लम्बे-चौड़े आँगनके परली तरफसे लड़केकी आवाज़ सुनाई दी, "मौसीजी, एक रोटी और, और दो गरीके लड्डू—जल्दी!"

जिसे आदेश दिया गया, उसने कहा, "उतर आओ न बेटा, तुम लोगोंकी तरह मैं क्या पेड़पर चढ़ सकती हूँ?"

जवाब मिला, "चढ़ सकोगी मौसी, जरा भी मुश्किल नहीं। उस मोटी डालपर पैर रखकर इस छोटी डालको पकड़के चटसे चढ़ आओगी।"

विजय पास जाकर खड़ा हो गया। रसोई-घरके सामने एक बड़ा-सा आमका पेड़ है, उसीकी दो मोटी डालोंपर कुमार और सन्तोष बैठे हैं। पैर लटकाकर तनेसे पीठ टेके दोनों खा रहे थे; विजयको देखते ही दोनों सिटपिटा गये। अनुराधा रसोई-घरके किवाड़के पीछे छिपके खड़ी हो गई।

विजयने पूछा, "यही क्या इन लोगोंकी खानेकी जगह है?"

किसीने उत्तर नहीं दिया। विजय अन्तराल-वर्तिनीको लक्ष्य करके कहने लगा, "आपपर देखता हूँ कि यह जोर-जुल्म किया करता है।"

अबकी बार अनुराधाने मुक्त-कण्ठसे जवाब दिया, "हाँ।"

"फिर भी तो आप सर चढ़ानेमें कसर नहीं रखतीं,—क्यों सर चढ़ा रही हैं?"

"नहीं चढ़ानेसे और भी ज्यादा ऊधम मचायेंगे, इस डरसे।"

"लेकिन घरपर तो ऐसा ऊधम नहीं करता।"

"सम्भव है, न करता हो। उसकी माँ नहीं है, दादी बीमार रहा करती है, बाप काम-काजमें बाहर फँसे रहते हैं, ऊधम मचाता किसपर?"

विजयको यह बात मालूम न हो, सो नहीं: परन्तु फिर भी लड़केकी माँ नहीं:

है, यह बात दूसरेके मुँहसे सुनकर उसे दुःख हुआ। बोला, "आप तो, मालूम होता है, बहुत कुछ जान गई हैं; किसने कहा आपसे? कुमारने?"

अनुराधाने धीरेसे कहा, "कहने लायक उमर उसकी नहीं हुई, फिर भी उसके मुँहसे ही सुना है। दोपहरको मैं इन लोगोंको धूपमें बाहर निकलने नहीं देती, तो भी आँख बचाकर भाग जाते हैं। जिस दिन नहीं जा पाते, उस दिन मेरे पास लेटकर कुमार घरकी बातें किया करता है।

विजय उसका चेहरा न देख सका; परन्तु उस पहले दिनकी तरह आज भी उसका कण्ठ-स्वर उसे अत्यन्त मधुर मालूम हुआ; इसीसे कहनेके लिए नहीं, बल्कि सिर्फ सुननेके लिए ही बोला, "अबकी बार घर जाकर उसे बड़ी मुसीबतका सामना करना पड़ेगा।"

"क्यों?"

"क्योंकि ऊधम मचाना एक तरहका नशा है। न मचा सकनेसे तकलीफ होती है, हुड़क-सी आने लगती है। दूसरे, वहाँ उसके नशेकी खुराक कौन जुटायेगा? दो ही दिनमें भागना चाहेगा।"

अनुराधाने आहिस्तेसे कहा, "नहीं नहीं, भूल जायगा।—कुमार, उतर आओ बेटा, रोटी ले जाओ।"

कुमार तश्तरी हाथमें लिए उतर आया और मौसीके हाथसे और भी कई रोटियाँ और गरीके लड्डू लेकर उससे सटकर खड़ा खड़ा खाने लगा, पेड़पर नहीं चढ़ा। विजयने देखा कि वे चीजें धनी घरकी अपेक्षा पद-गौरवमें चाहे जितनी भी तुच्छ क्यों न हों, पर वास्तविक सम्मानकी दृष्टिसे जरा भी तुच्छ नहीं। लड़का क्यों मौसीके रसोई-घरके प्रति इतना आसक्त हो गया है, विजय उसका कारण समझ गया। वह सोचकर तो यह आया था कि कुमारकी लुब्धतापर इन लोगोंकी तरफसे अकारण और अतिरिक्त खर्चकी बात कहके प्रचलित शिष्ट वाक्योंसे पुत्रके लिए संकोच प्रकट करेगा, और करने भी जा रहा था, पर बाधा आ पड़ी। कुमारने कहा, "मौसीजी, कल जैसी चन्द्रमूली× आज भी बनानेके लिए कहा था, सो क्यों नहीं बनाई तुमने?"

मौसीने कहा—"कसूर हो गया बेटा,—ज़रा-सी आँख चूक गई, सो बिल्लीने दूध उलट दिया,— कल ऐसा न होगा।"

"कौन-सी बिल्लीने, बताओ तो? सफेदने?

×नारियलकी गरीसे बनी हुई एक तरहकी अर्द्धचन्द्राकार मिठाई।

"वही होगी, शायद।" कहकर अनुराधा उसके माथेके बिखरे हुए बालोंको सम्हालने लगी।

विजयने कहा, "ऊधम तो देखता हूँ क्रमशः जुल्ममें परिणत हो रहा है!"

कुमारने कहा, "पीनेका पानी कहाँ है?"

"अरे! याद भूल गई बेटा, लाये देती हूँ।"

"तुम सब भूल जाती हो मौसी, तुम्हें कुछ भी याद नही रहता।"

विजयने कहा, "आपपर फटकार पड़नी चाहिए। कदम-कदमपर गलती होती है।"

"हाँ।" कहकर अनुराधा हँस दी। असावधानीके कारण यह हँसी विजयने देख ली। पुत्रके अवैध आचरणके लिए क्षमा माँगना न हो सका, इस डरसे कि कहीं उसके भद्र वाक्य अभद्र व्यंग-से न सुनाई दें, कहीं, वह ऐसा न समझ बैठे कि उसकी गरीबी और बुरे दिनोंपर वह कटाक्ष कर रहा है!

दूसरे दिन, दोपहरको अनुराधा कुमार और सन्तोषको भात परोसकर साग तरकारी परोस रही थी, माथा खुला था। बदनका कपड़ा कहींका कहीं जा रहा था, इतनेमें अचानक दरवाजेके पास किसी आदमीकी परछाँही आ पड़ी, अनुराधाने मुँह उठाकर देखा, तो छोटे बाबू हैं! एकाएक सकुचाकर उसने माथेपर कपड़ा खींच लिया और वह उठके खड़ी हो गई।

विजयने कहा, "एक बहुत जरूरी सलाहके लिए आपके पास आया हूँ। विनोद घोष इसी गाँवका आदमी ठहरा, आप तो उसे जानती होंगी,—कैसा आदमी है यह बता सकती हैं? उसे गणेशपुरका नया गुमाश्ता कायम किया है। पूरी तौरसे उसपर विश्वास किया जा सकता है या नहीं,—आपका क्या खयाल है?"

विनोद एक सप्ताहसे ज्यादह हो गया, यथासाध्य काम तो अच्छा ही कर रहा है, किसी तरहकी गड़बड़ी नहीं की, सहसा घबराकर उसके चरित्रकी खोज-खबर लेनेकी ऐसी क्या जरूरत आ पड़ी—अनुराधाकी कुछ समझमें न आया। उसने मृदु-कंठसे पूछा, "विनोद-भइया कुछ कर बैठे हैं क्या?"

"अभी तक कुछ किया तो नहीं, मगर सावधान होनेकी जरूरत तो है ही?"

"मै तो उन्हें अच्छा ही आदमी समझती आई हूँ।"

"'सचमुच समझती हैं या निन्दा नहीं करना चाहतीं, इसलिए अच्छा कह रही हैं?"

''मेरे भले-बुरे कहनेकी क्या कोई कीमत है ?"

"है क्यों नहीं ! वह तो आपको ही प्रामाणिक साक्षी मान बैठा है?"

अनुराधाने जरा सोच विचारकर कहा, "हैं तो वह अच्छे ही आदमी। फिर भी जरा निगाह रखिएगा। अपनी लापरवाहीसे अच्छे आदमीका भी बुरा हो जाना कोई असम्भव बात नहीं।"

विजयने कहा, "सच्ची बात तो यही है। कारण, कसूरका कारण ढूँढ़ा जाय तो अधिकांश मामलोंमें दंग रह जाना पड़ता है।"

फिर लड़केको लक्ष्य करके कहा, "तेरी तकदीर अच्छी है जो अचानक एक मौसी मिल गई तुझे, नहीं तो इस जंगलमें आधे दिन तुझे बगैर खाये ही बिताने पड़ते !"

अनुराधाने धीरेसे पूछा, "आपको क्या यहाँ खाने-पीनेकी तकलीफ हो रही है ?"

विजयने हँसकर कहा—"नहीं तो, ऐसे ही कहा है। हमेशासे परदेशमें ही दिन बिताये हैं, खाने पीनेकी तकलीफोंकी कोई खास परवाह नहीं करता।" कहकर वह चला गया। अनुराधाने खिड़कीकी संधमेंसे देखा कि अभी तक वह नहाया-निबटा भी नहीं।

४

इस मकानमें आनेके बाद एक पुरानी आरामकुर्सी मिल गई थी. शामको उसीके हथेलोंपर दोनों पैर पसारकर विजय आँख मीचे चुरुट पी रहा था; इतनेमें कानमें भड़क पड़ी, "बाबू साहब !" आँख खोलकर देखा—पास ही एक वृद्ध सज्जन खड़े सम्मानके साथ उसे सम्बोधन कर रहे हैं। विजय उठकर बैठ गया। सज्जनकी उमर साठके ऊपर पहुँच चुकी है, लेकिन मजेका गोलमटोल ठिंगना मजबूत समर्थ शरीर है। मूँछें पककर सफेद हो गई हैं, मगर गंजी चाँदके इधर-उधरके बाल भौरे-से काले हैं। सामनेके दो-चार दाँतोंके सिवा बाकी प्रायः सभी बने हुए हैं। बदनपर टसरका कोट और कन्धेपर चादर है, पाँवमें चीनी दूकानके बार्निशदार जूते हैं और घड़ीकी सोनेकी चैनके साथ शेरका नाखून जड़ा हुआ लटक रहा है।

गँवई-गाँवमें यह सज्जन बहुत धनाढ्य मालूम पड़ते हैं। पास ही एक टूटी चौकीपर चुरुटका सामान रक्खा था। उसे खिसकाकर विजयने उन्हें बैठनेको कहा। वृद्ध सज्जनने बैठकर कहा, "नमस्कार बाबू साहब।"

विजयने कहा, "नमस्कार।"

आगन्तुकने कहा, "आप लोग गाँवके जमींदार ठहरे, आपके पिताजी बड़े प्रतिष्ठित—लखपती आदमी हैं। नाम लेते सुप्रभात होता है,—आप उन्हींके सुपुत्र हैं। उस बेचारीपर दया न करनेसे बड़े संकटमें पड़ जायगी।"

"बेचारी कौन? उसपर कितने रुपये निकलते हैं?"

सज्जनने कहा, "रुपये पैसेका मामला नहीं है। जिसका मैं जिक्र कर रहा हूँ, वह है स्वर्गीय अमर चटर्जीकी कन्या—वे प्रातःस्मरणीय व्यक्ति थे—गगन चटर्जीकी सौतेली बहन। यह उसका पैतृक मकान है। वह रहेगी नहीं, चली जायगी,—उसका इन्तजाम हो गया है;—मगर आप जो उसे गरदन पकड़के निकाल दे रहे हैं, यह क्या आपके लिए उचित है?"

इस अशिक्षित वृद्धपर गुस्सा नहीं किया जा सकता, विजय इस बातको मन ही मन समझ गया; परन्तु बात करनेके ढंगसे वह जल-भुन गया। बोला "अपना उचित-अनुचित मैं खुद समझ लूँगा, मगर आप कौन हैं जो उनकी तरफसे वकालत करने आये हैं?"

वृद्धने कहा, "मेरा नाम है त्रिलोचन गंगोपाध्याय, पासके गाँव मसजिद-पुरमें मकान है—सभी जानते हैं मुझे। आपके माँ-बापके आशीर्वादसे इधर ऐसा कोई आदमी मिलना मुश्किल है, जिसे मेरे पास जाकर हाथ न पसारना पड़ता हो। आपको विश्वास न हो, तो विनोद घोषसे पूछ सकते हैं।"

विजयने कहा, "मुझे हाथ पसारनेकी जरूरत होगी, तो महाशयजीका पता लगा लूँगा, मगर जिनकी आप वकालत करने आये हैं, उनके आप लगते कौन हैं, क्या मैं जान सकता हूँ?"

सज्जन मजाककी तौर पर जरा मुसकरा दिये, बोले, "मेहमान। बैसाखके ये कुछ दिन बीतने पर ही मैं उससे ब्याह कर लूँगा।"

विजय चौंक पड़ा, बोला, "आप विवाह करेंगे अनुराधासे?"

"जी हाँ। मेरा यह पक्का इरादा है। जेठके बाद फिर जल्दी कोई सहालग नहीं, नहीं तो इसी महीनेमें यह शुभ कार्य सम्पन्न हो जाता,—यह रहने देनेकी बात मुझे आपसे कहनी भी न पड़ती।"

कुछ देर तक स्थिर रहकर विजयने पूछा, "इस व्याहकी बरेखी किसने की? गगन चटर्जीने?"

वृद्धने क्रुद्ध दृष्टिसे देखते हुए कहा, "वह तो फरारी असामी है, साहब, —रिआयाका सत्यानाश करके चम्पत हो गया है। इतने दिनोंसे वही तो बिघन डाल रहा था, नहीं तो अगहनमें ही व्याह हो जाता। कहता था, हम लोग स्वभाव-कुलीन ठहरे, कृष्णाकी सन्तान,—वंशजके घर बहनको नहीं व्याहेंगे। यह था उसका बोल। अब वह गरूर कहाँ गया? वंशजके घर ही तो आखिर गरजू बनकर आना पड़ा! आजकलके जमानेमें कुल कौन खोजता फिरता है साहब? रुपया ही कुल है, रुपया ही इज्जत, रुपया ही सब-कुछ है,—कहिए, ठीक है कि नहीं?"

विजयने कहा, "हाँ सो तो ठीक है। अनुराधाने मंजूर किया है?"

सज्जनने दम्भके साथ अपनी जाँघपर हाथ मारकर कहा, "मंजूर? कहते क्या हैं साहब? खुशामदें की जा रही हैं। शहरसे आकर आपने जो एक घुड़की दी, बस फिर क्या था, आँखों-तले अँधेरा दिखाई देने लगा,—मइया री दइया री पड़ गई। नहीं तो मेरा तो इरादा ही जाता रहा था। लड़कोंकी राय नहीं, बहुओंकी राय नहीं, लड़कियाँ और दामाद भी सब विमुख हो गये थे—और मैंने भी सोचा कि जाने दो, गोली मारो, दो बार तो गृहस्थी हो चुकी,—अब रहने दो। पर जब राधाने स्वयं आदमी भेजकर मुझे बुलवाकर कहा कि 'गंगोली महाशय, चरणोंमें स्थान दीजिए: तुम्हारे घर आगन बुहारकर खाऊँगी, सो भी अच्छा।' तब क्या करता मंजूर करना ही पड़ा।"

विजय अवाक् होकर बैठा रहा।

वृद्ध महाशय कहने लगे, "व्याह इसी मकानमें होना चाहिए। देखनेमें जरा भद्दा मालूम होगा, नहीं तो मेरे मकानमें भी हो सकता था। गगन चटर्जीकी कोई एक बुआ हैं, वे ही कन्या-दान करेंगी। अब सिर्फ आप राजी हो जायँ, तो सब काम ठीक हो जाय।"

विजयने मुँह उठाकर कहा, "राजी होकर मुझे क्या करना पड़ेगा, बताइए? मैं मकान खाली करनेकी ताकीद न करूँ—यही तो? अच्छी बात है, ऐसा ही होगा। अब आप जा सकते हैं,—नमस्कार।"

"नमस्कार महाशयजी, नमस्कार। सो तो है ही, सो तो है ही। आपके पिता ठहरे लखपती, प्रातःस्मरणीय आदमी, नाम लेनेसे सुप्रभात होता है।"

"सो होता है। आप अब पधारिए।"

"तो जाता हूँ महाशयजी,—नमस्कार।" कहकर त्रिलोचन बाबू चल दिये।

वृद्ध महाशयके चले जानेपर विजय चुपचाप बैठा हुआ अपने मनको समझा रहा था कि उसे इस मामलेमें सर खपानेकी क्या जरूरत है! वास्तवमें इसके सिवा उस लड़कीके लिए चारा ही क्या है? कोई ऐसी बात नहीं है, जो संसारमें पहले कभी हुई ही न हो। संसारमें ऐसा तो होता ही रहता है, फिर उसके लिए दुश्चिन्ता किस बातकी? सहसा विनोद घोषकी बात उसे याद आ गई। उस दिन वह कह रहा था, अनुराधा अपने भइयाके साथ इसी बातपर झगड़ने लगी थी कि कुलके गौरवसे उसे क्या करना है, आसानीसे खाने-पहरने भरको मिल जाय, इतना ही काफी है।

प्रतिवादमें गगनने गुस्सेमें आकर कहा था, तू क्या मा-बापका नाम डुबोना चाहती है? अनुराधाने जवाब दिया था, तुम उनके वंशधर हो, नाम कायम रख सको तो रखना, मैं नहीं रख सकूँगी।

इस बातकी वेदनाको विजय न समझ सका। खुद भी वह कौलीन्य-सम्मानपर जरा भी विश्वास रखता हो, सो बात नहीं; मगर फिर भी उसकी सहानुभूति जा पड़ी गगनपर; और अनुराधाके तीखे उत्तरकी ज्यों ज्यों अपने मनमें आलोचना करने लगा त्यों त्यों उसे वह लज्जाहीन, लोभी और हीन-तुच्छ मालूम होने लगी।

इधर बाहर सहनमें क्रमशः आदमियोंकी भीड़ जम रही थी, अब उनको लेकर उसे काम शुरू करना है; मगर आज उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगा दरवानसे कहकर उनको विदा कर दिया; और बैठकमें अकेला बैठा न गया, तो वह न जाने क्या सोचकर एकबारगी सीधा घरके भीतर पहुँच गया। रसोईघरके सामने खुले बरामदेमें चटाई बिछाकर अनुराधा लेटी हुई है; उसके दोनों तरफ दोनों लड़के हैं, कुमार और सन्तोष;—महाभारतकी कहानी चल रही है। रातकी रसोईका काम वह जल्दी-जल्दी निबटाकर रोज शामके बाद इसी तरह लड़कोंके साथ लेटकर कहानियाँ सुनाया करती है; और फिर कुमारको खिला-पिलाकर उसे अपने बापके पास भेजा दिया करती है। चाँदनी रात है, घन-पल्लव आम्रवृक्षके पत्तोंकी संधोंमेंसे चाँदकी चाँदनी

छन-छनकर उनके शरीरपर चेहरेपर पड़ रही है। पेड़की छायामें किसी आदमीको इधर आते देखा, तो अनुराधाने चौंककर पूछा, "कौन?"

"मै हूँ, विजय।"

तीनों जनें भड़भड़ाकर उठ बैठे। सन्तोष छोटे बाबूसे बहुत ज्यादा डरता है, पहले दिनकी याद उसे अभी भूली नहीं है,—वह इतस्ततः करके उठके भाग गया, कुमारने भी अपने मित्रका अनुसरण किया।

विजयने कहा, "त्रिलोचन गंगोलीको आप पहचानती हैं? आज वे मेरे पास आये थे।"

अनुराधाको बड़ा आश्चर्य हुआ; उसने कहा, "आपके पास? मगर आप तो उनके कर्ज़दार नहीं हैं?"

"नहीं। मगर होता तो शायद आपको लाभ होता: मेरे एक दिनके अत्याचारका बदला आप और किसी दिन चुका सकतीं।"

अनुराधा चुप रही। विजय कहने लगा, "वे जता गये हैं कि आपके साथ उनका ब्याह होना तय हो गया है। यह क्या सच है?"

"हाँ।"

"आपने खुद उपयाचक बनकर उन्हें राजी किया?"

"हाँ, यही बात है।"

"अगर ऐसा ही है, तो बड़ी शरमकी बात है। केवल आपके लिए ही नहीं, मेरे लिए भी।"

"आपके लिए क्यों?"

"यही बतलानेके लिए आया हूँ मैं। त्रिलोचन कह गये है कि मेरी ज्यादतीसे ही शायद आपने ऐसा प्रस्ताव किया है। कहते थे, आपके लिए कहीं ठौर नहीं: और बहुत आरजू-बिनती करके आपने उन्हें राजी किया है, नहीं तो इस बुढ़ापेमें उन्होंने ब्याहकी इच्छा छोड़ ही दी थी। केवल आपके रोने-धोनेपर दया करके ही त्रिलोचन राजी हुए हैं।"

"हाँ, यह सब कुछ सच है।"

विजयने कहा, "अपनी ज्यादती मैं वापस लेता हूँ, और अपने आचरणके लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ।"

अनुराधा चुप रही। विजय कहने लगा, "अब अपनी तरफसे आप प्रस्तावको वापस ले लीजिए।"

" नहीं, सो नहीं हो सकता। मैंने वचन दे दिया है—सब कोई सुन चुके हैं—लोग उनका मखौल उड़ायेंगे।"

" इसमें नहीं उड़ायेंगे? बल्कि, बहुत ज्यादा उड़ायेंगे। उनके बराबरके लड़के हैं, लड़कियाँ हैं, उनके साथ लड़ाई-झगड़ा होगा; उनकी घर-गृहस्थीमें उपद्रव उठ खड़ा होगा, खुद आपके लिए भी अशान्तिकी हद न रहेगी,—ये सब बातें आपने सोच-विचार ली हैं?"

अनुराधाने मुलायम स्वरमें कहा, " सोच ली हैं। मेरा विश्वास है कि यह सब-कुछ नहीं होनेका।"

सुनकर विजय दंग रह गया, बोला, " वृद्ध हैं, कितने दिन जीयेंगे—आप आशा करती हैं?"

अनुराधाने कहा, " पतिकी परमायु संसारमें सभी स्त्रियाँ ज्यादा चाहती हैं। ऐसा भी हो सकता है कि सुहाग लिये मैं ही पहले मर जाऊँ।"

विजयको इस बातका जवाब ढूँढ़े न मिला; स्तब्ध होकर खड़ा रहा। कुछ क्षण इसी तरह निस्तब्धतामें बीत जानेपर अनुराधाने विनीत स्वरमें कहा, "यह सच है कि आपने मुझे चले जानेका हुक्म दे दिया है, मगर फिर किसी दिन उस बातका उल्लेख तक नहीं किया। दयाके योग्य मैं नहीं हूँ फिर भी आपने दया की है। मन ही मन में इसके लिए कितनी कृतज्ञ हूँ यह जता नहीं सकी हूँ।"

विजयकी तरफसे कोई उत्तर न पाकर कहने लगी, "भगवान् जानते हैं आपके विरुद्ध किसीके पास मैंने एक भी बात नहीं कही। कहनेसे मेरी तरफसे अन्याय होता, मेरा झूठा कहना होता। गंगोली महाशयने अगर कुछ कहा हो, तो वह उनकी बात है, मेरी नहीं। फिर भी मैं उनकी तरफसे क्षमा माँगती हूँ।"

विजयने पूछा, "आप लोगोंका कब व्याह है, जेठ बदी तेरसका? तो करीब महीना भर बाकी है—न?"

"हाँ।"

"इसमें अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता शायद?"

"शायद नहीं। कमसे कम, भरोसा तो वे ऐसा ही दे गये हैं।"

विजय बहुत देर तक चुप रहकर बोला, "तो फिर मुझे और कुछ नहीं

कहना, लेकिन अपने भविष्य जीवनपर आपने जरा भी विचार नहीं किया, इस बातका मुझे बड़ा अफ़सोस है।"

अनुराधाने कहा, "एक बार नहीं, सौ-सौ बार विचार कर लिया है। यह मेरी दिन-रातकी चिन्ता है। आप मेरे शुभाकांक्षी हैं, आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेकी भाषा ढूँढ़े नहीं मिलती, लेकिन आप खुद ही तो एक बार मेरे विषयमें सारी बातें सोच देखिए,—पैसा नहीं, रूप नहीं, घर नहीं, बिना अभिभावककी अकेली, गाँवके अनाचार-अत्याचारसे बचकर कहीं जाकर खड़े होने तकका ठौर नहीं—उमर हो गई तेईस-चौबीस,—उनके सिवा और कौन मुझे ब्याहना चाहेगा, आप ही बताइए? तब फिर दाने-दानेके लिए किसके सामने हाथ पसारती फिरूँगी? सुनकर आप भी क्या सोचेंगे मनमें?"

ये सभी बातें सच हैं, प्रतिवादमें कुछ कहा नहीं जा सकता। दो तीन मिनट निरुत्तर खड़े रहकर विजयने गम्भीर अनुतापके साथ कहा, "ऐसे समयमें क्या आपका मैं कोई भी उपकार नहीं कर सकता? कर सकता तो बहुत खुश होता।'

अनुराधाने कहा, "आपने मेरा बहुत उपकार किया है, जो कोई नहीं करता। आपके आश्रयमें मैं निडर हूँ,—दोनों बच्चे मेरे चाँद-सूरज हैं—यही मेरे लिए काफी है। आपसे सिर्फ इतनी ही प्रार्थना है कि मन ही मन आप मुझे भइयाके दोषकी भागिनी न बना रखिएगा, मैंने जान-बूझकर कोई अपराध नहीं किया।"

"सो मुझे मालूम हो गया है: आपको कहना न होगा।" इतना कहकर विजय धीरे धीरे बाहर चला गया।

५

कलकत्तेसे कुछ साग-सब्जी, फलफलारी और मिठाई वगैरह आई थी। विजयने नौकरसे रसोईघरके सामने टोकनी उतरवाकर कहा, "भीतर होंगी जरूर—"

भीतरसे मृदुकंठसे उत्तर आया—"हूँ।"

विजयने कहा, "आपको पुकारना भी मुश्किल है। हमारे समाजमें होतीं तो मिस चटर्जी या मिस अनुराधा कहकर आसानीसे पुकारा जा सकता था, पर यहाँ तो वह बात बिलकुल चल ही नहीं सकती। आपके लड़कोंमेंसे कोई

होता तो उनमेंसे किसीको 'अपनी मौसीको बुला दे' कहकर काम निकाल लिया जा सकता था, पर इस वक्त वे भी फरार हैं। क्या कहकर बुलाऊँ बताइए तो?"

अनुराधा दरवाजेके पास आकर बोली, "आप मालिक ठहरे, मुझे राधा कहकर पुकारा कीजिए।"

विजयने कहा, "बुलानेमें कोई आपत्ति नहीं, पर मालिकाना हकके जोरसे नहीं। मालिकाना हक था गगन चटर्जीपर, मगर वह तो चम्पत हो गया। आप क्यों मालिक मानने लगीं? आपको किस बातकी गरज है?"

भीतरसे सुनाई दिया, "ऐसी बात न कहिए,—आप हैं तो मालिक ही।

विजयने कहा, "उसका दावा मैं नहीं करता, पर उमरका दावा जरूर रखता हूँ। मैं आपसे बहुत बड़ा हूँ; नाम लेकर पुकारा करूँ तो आप नाराज न होइएगा।"

"नहीं।"

विजयने इस बातपर लक्ष्य किया है कि घनिष्ठता करनेका आग्रह स्वयं उसकी तरफसे कितना ही प्रबल क्यों न हो, पर दूसरे पक्षकी तरफसे जरा भी नहीं। वह किसी भी तरह सामने नहीं आना चाहती और बराबर संक्षेप और सम्मानके साथ ही ओटमें छिपे-छिपे उत्तर दिया करती है।

विजयने कहा, "घरसे कुछ साग-सब्जी, फल-फलारी, मिठाई वगैरह आई है। इस टोकरीको उठाके रख दीजिए, लड़कोंको दे-दा दीजिएगा।"

"छोड़ जाइए। जरूरतके माफिक रखकर आपके यहाँ बाहर भिजवा दूँगी।"

"नहीं, सो मत कीजिएगा। मेरा रसोइया ठीकसे रसोई बनाना भी नहीं जानता। दोपहरसे देख रहा हूँ कि चादर तानके पड़ा हुआ है। मालूम नहीं, कहीं आपके देशके मैलेरियाने न घेर लिया हो। बीमार पड़ गया तो परेशान कर डालेगा।'

"पर मैलेरिया तो हमारे यहाँ नहीं है। वह अगर न उठा, तो आपकी रसोई कौन बनायेगा?"

विजयने कहा "इस छाककी तो कोई बात नहीं, कल सबेरे विचार किया जायगा। और 'कूकर' तो साथमें है ही, कुछ नहीं हुआ तो अन्तमें नौकरसे ही उसमें कुछ बनवा बनवा लूँगा।"

"लेकिन उसमें तकलीफ तो होगी ही?"

"नहीं। मुझे तो आदत पड़ी हुई है। हाँ, लड़केको तकलीफ पाते देखना तो जरूर कष्ट होता। सो उसका भार आपने ले रक्खा है। क्या बना रही हैं इस छाक? टोकरी खोलके देखिए न, शायद कोई चीज काम आ जाय।"

"काम तो आयेगी ही। पर इस छाक मुझे रसोई बनानी नहीं है।"

"नहीं बनानी? क्यों?

"कुमारकी देह कुछ गरम-सी मालूम होती है,—रसोई बनानेसे वह खानेके लिए मचलेगा। उस छाकका जो कुछ बचा है, उससे संतोषका काम चल जायगा।"

"देह गरम हो रही है उसकी? कहाँ है वह?

"मेरे बिछौनेपर पड़ा,—सन्तोषके साथ गपशप कर रहा है। आज कह रहा था, बाहर नहीं जायगा, मेरे ही पास सोयेगा।"

विजयने कहा "सो, सो रहे; लेकिन ज्यादा लाड़-दुलार पानेसे फिर वह मौसीको छोड़कर घर नहीं जाना चाहेगा। तब फिर एक नई परेशानी उठानी पड़ेगी।"

"नहीं उठानी पड़ेगी। कुमार कहना न माननेवाला लड़का नहीं है।"

विजयने कहा "क्या होनेसे कहना न माननेवाला होता है, सो आप जानें: पर मैने तो सुना है कि आपको वह कम परेशान नहीं करता।"

अनुराधा कुछ देर चुप रह कर बोली "परेशान करता है तो सिर्फ मुझहीको करता है, और किसीको नहीं करता।"

विजयने कहा "सो मैं जानता हूँ। लेकिन मौसीने, मान लो कि सह लिया, पर ताईजी उसकी नहीं सहनेकी। और अगर किसी दिन विमाता आ गई, तो जरा भी बरदाश्त नहीं करेगी। आदत बिगड़ जानेसे खुद उसीके लिए खराबी होगी।"

"लड़केके लिए खराबी हो ऐसी विमाता आप घरमें लावें ही क्यों? न सही।"

विजयने कहा "लानी नहीं पड़ती, लड़केकी तकदीर फूटनेपर विमाता अपने आप ही घरमें आजाती है। तब उस खराबीको रोकनेके लिए मौसीकी शरण लेनी पड़ती है। पर हाँ, अगर वे राजी हों।"

अनुराधाने कहा "जिसके मा नहीं है, मौसी उसे छोड़ नहीं सकती। कितने भी दुःखोंमें क्यों न हो, उसे पाल पोसकर बड़ा करती ही है।"

"बातको सुने रखता हूँ ।" कहकर विजय चला जा रहा था, फिर लौटकर बोला "अगर अविनयको माफ करें तो एक बात पूछूँ ?"

"पूछिए ।"

"कुमारकी चिन्ता पीछे की जायगी, कारण उसका बाप जिन्दा है । आप उसे जितना निष्ठुर समझती हैं, उतना वह नहीं है । पर सन्तोष ? उसके बाप-मा दोनों ही जाते रहे हैं, नये मौसा त्रिलोचनके घर अगर उसके लिए ठौर न हो तो उसका क्या करेंगी ? इस बातपर विचार किया है ?"

अनुराधाने कहा "मौसीके लिए ठौर होगा बहनौतेके लिए नहीं होगा ?"

"होना तो चाहिए, लेकिन जितना मैं उन्हें देख सका हूँ, उससे तो ज्यादा भरोसा नहीं होता ।"

इस बातका जवाब अनुराधा उसी वक्त न दे सकी, सोचनेमें जरा समय लगा । फिर शान्त और दृढ़ कंठसे कहने लगी, "तब पेड़के नीचे दोनोंके लिए ठौर होगा । उसे कोई नहीं रोक सकता ।"

विजयने कहा, "बात तो मौसीके लायक है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता; मगर यह सम्भव नहीं । तब उसे मेरे पास भेज दीजिएगा । कुमारका साथी है वह,—कुमार अगर आदमी बन सका तो वह भी बन जायगा ।"

भीतरसे फिर कोई जवाब नहीं आया, विजय कुछ देर बाट देखकर बाहर चला गया ।

दो-तीन घंटे बाद संतोष आकर दरवाजेके बाहरसे बोला, "मौसीजी आपको खानेके लिए बुला रही हैं।"

"मुझे ?" विजयने पूछा ।

"हाँ ।" कहकर वह चला गया ।

अनुराधाके रसोईघरमें आसन बिछा हुआ था । विजय आसनपर बैठकर बोला, "रात आसानीसे कट जाती, क्यों आपने इतनी तकलीफ उठाई ?"

अनुराधा पास ही खड़ी थी, चुप रही ।

परोसी हुई चीजोंमें कोई ज्यादती नहीं थी, पर जतनसे बनाये और परोसे जानेका परिचय हर चीजमें झलक रहा था । वे कैसे सुन्दर ढंगसे चीजें सजी हुई थीं ! खाते-खाते विजयने पूछा, "कुमारने क्या खाया ?"

"सागू पीकर सो गया है ।"

"लड़ा नहीं आज ?"

अनुराधा हँस दी, बोली, "मेरे पास सोयेगा, इस लिए आज वह बिलकुल शान्त है। कतई नहीं लड़ा।"

विजयने कहा, "उसके कारण आपकी झंझटें बढ़ गई हैं; पर इसमें मेरा दोष नहीं। वह खुद कैसे आपकी गृहस्थीमें आकर चुपचाप शामिल हो गया, यही मैं सोचता हूँ।"

"मैं भी यही सोचती हूँ।"

"मालूम होता है उसके चले जाने पर आपको कष्ट होगा।"

अनुराधा पहले तो चुप रही, फिर बोली, "उसे घर ले जानेके पहले लेकिन आपको एक वचन दे जाना होगा। आपको इस बातकी निगरानी रखनी होगी कि उसे किसी बातकी तकलीफ न होने पाए।"

"मगर मैं तो बाहर रहूँगा काम-काजके झंझटोंमें;—अपने बचनकी रक्षा कर सकूँगा, इस बातका भरोसा नहीं होता।"

"तो फिर उसे मेरे पास छोड़ जाना होगा।"

"आप गलती कर रही हैं। यह और भी असम्भव है।" इतना कहकर विजय हँसता हुआ खानेमें लग गया। खाते-खाते बीचमें बोल उठा, "भाभी वगैरहकी आनेकी बात थी, शायद वे अब आयेंगी नहीं।"

"क्यों?"

"जिस धुनमें कहा था वह धुन शायद जाती रही होगी। शहरके लोग गँवई-गाँवकी तरफ जल्दी कदम नहीं बढ़ाना चाहते। एक हिसाबसे अच्छा ही हुआ। अकेला मैं ही आपको काफी असुविधा पहुँचा रहा हूँ, उन लोगोंके आ जानेसे और भी दिक़्क़त होती।"

अनुराधाने इस बातका प्रतिवाद करते हुए कहा, "आपका यह कहना बेजा है। घर मेरा नहीं, आपका है। फिर भी, मैं ही सारी जगह घेरे बैठी रहूँ और उनके आनेपर नाराज होऊँ, इससे ज्यादा अन्याय और कुछ हो ही नहीं सकता। मेरे बारेमें ऐसी बात सोचकर, मेरे प्रति सचमुच ही आप अन्याय कर रहे हैं। जितनी दया आपने मुझपर की है, मेरी तरफसे उसका क्या यही प्रतिदान है?"

इतनी बातें इस ढंगसे उसने कभी नहीं कहीं। जवाब सुनकर विजय दंग रह गया। इस गाँवकी लड़कीको उसने जितना अशिक्षित समझ रक्खा था,

उतनी वह नहीं है। थोड़ी देर स्थिर रहकर उसने अपना कसूर मंजूर करते हुए कहा, "वास्तवमें मेरा यह कहना उचित नहीं हुआ। जिनके विषयमें यह बात ठीक हो सकती है, उनसे आप ज्यादा बड़ी हैं। मगर, दो-तीन दिन बाद ही मैं घर चला जाऊँगा;—यहाँ आकर शुरू-शुरूमें आपके साथ मैंने बहुत बुरा सलूक किया है, लेकिन वह बगैर पहिचाने हुआ है। सचमुच संसारमें ऐसा ही हुआ करता है, अक्सर यही होता है। फिर भी जानेके पहले मैं गहरी लज्जाके साथ क्षमा माँगता हूँ।"

"अनुराधाने मृदुल कण्ठसे कहा, "क्षमा आपको नहीं मिल सकती।"

"नहीं मिल सकती? क्यों?"

'अब तक जितना अत्याचार किया है आपने, उसकी क्षमा नहीं"—कहकर हँस दी। प्रदीपके अल्प प्रकाशमें उसके हँसी-भरे चेहरेपर विजयकी नजर पड़ गई, और क्षण-भरके एक अज्ञात विस्मयसे उसका सारा हृदय हिल कर तुरत स्थिर हो गया। क्षण-भर चुप रहकर बोला, "यही अच्छा है, मुझे क्षमा करनेकी जरूरत नहीं। अपराधीके रूपमें ही मैं हमेशा याद आता रहूँ।"

दोनों चुप रहे। दो-तीन मिनट तक कमरेमें बिल्कुल सन्नाटा रहा।

निस्तब्धता भंगकी अनुराधाने। उसने पूछा, "आप फिर कब तक आयेंगे?

"बीच-बीचमें आना तो होगा ही, हालाँ कि आपसे भेंट अब न होगी।"

दूसरे पक्षसे प्रतिवाद नहीं किया गया, समझमें आ गया कि बात सच है।

खा चुकनेके बाद विजयके घर जाते समय अनुराधाने कहा "टोकरीमें बहुत तरहकी तरकारियाँ हैं, पर बाहर अब न भेजूँगी। कल सबेरे भी आप यहीं जीमिएगा।"

"तथास्तु। मगर समझ तो गई होंगी शायद कि औरोंकी अपेक्षा मेरी भूख ज्यादा है। नहीं तो प्रस्ताव पेश करता कि सिर्फ सबेरे ही नहीं, निमन्त्रणकी मियाद और भी बढ़ा दीजिए—जितने दिन मैं यहाँ रहूँ और जिससे आपके हाथकी ही खाकर, घर चला जा सकूँ।"

उत्तर मिला, "यह मेरा सौभाग्य है।"

दूसरे दिन सबेरे ही अनेक प्रकारके खाद्य-पदार्थ अनुराधाके रसोईघरके बरामदेमें आ पहुँचे। उसने कोई आपत्ति नहीं की, उठाके रख दिये।

इसके बाद तीन दिनके बदले पाँच दिन बीत गये। कुमार बिलकुल स्वस्थ

हो गया। इन कई दिनोंमें विजयने क्षोभके साथ लक्ष्य किया कि आतिथ्यकी त्रुटि कहीं भी नहीं, पर परिचयकी दूरी वैसी ही अविचलित बनी हुई है, किसी भी बहाने वह तिल-भर भी निकटवर्ती नहीं हुई। बरामदेमें भोजनके लिए जगह करके अनुराधा भीतरहीसे ढंगके साथ थाली लगा देती है, और सन्तोष परोसता है। कुमार आकर कहता, "बापूजी, मौसीजी कहती हैं कि मछलीकी तरकारी इतनी छोड़ देनेसे काम न चलेगा, और जरा खानी होगी।' विजय कहता, 'अपनी मौसीजीसे कह दे कि बापूजीको राक्षस समझना ठीक नहीं।' कुमार लौटकर कहता, 'मछलीकी तरकारी रहने दो, शायद अच्छी न हुई होगी। लेकिन कलकी तरह कटोरेमें दूध पड़ा रहनेसे उन्हें दुःख होगा।' विजयने सुनाकर कहा, 'तेरी मौसीजी अगर कलसे नाँदके बदले कटोरीमें दूध दिया करें तो न पड़ा रहेगा।'

६

इसी तरह ये पाँच दिन बीत गये। स्त्रियोंके आदर-जतनका चित्र विजयके मनमें हमेशासे ही अस्पष्ट था। अपनी माको वह बचपनसे ही अस्वस्थ और अपटु देखता आया है, गृहिणीपनका कोई भी कर्तव्य वे पूरी तौरसे नहीं कर पाती थीं। उसकी अपनी स्त्री भी सिर्फ दो-ढाई साल जीवित रही, और तब वह पढ़ता था,—उसके बाद फिर उसका लम्बा समय सुदूर प्रवासमें ही बीता। उस दिशाके अपने अनुभवोंकी भली बुरी बहुत-सी स्मृतियाँ कभी-कभी उसे याद आ जाती हैं; परन्तु वे सब मानों पुस्तकमें पढ़ी हुई कल्पित कहानियोंकी तरह अवास्तव मालूम होती हैं। जीवनकी वास्तविक आवश्यकताओंसे उनका कोई सम्बन्ध ही नहीं।

और रही भाभी प्रभामयी; सो जिस परिवारमें भाभीका प्राधान्य है, भले-बुरेकी आलोचना हुआ करती है, वह परिवार उसे अपना नहीं मालूम होता। माको उसने बहुत बार रोते देखा है, पिताको नाराज और उदास रहते देखा है; पर इन सब बातोंको उसने खुद ही असंगत और अनधिकार-चर्चा समझा है। ताई अपने देवरौतकी खबर-सुध न ले, या बहू अपने सास-ससुरकी सेवा न करे, तो बड़ा भारी अपराध है—ऐसी धारणा भी उसकी नहीं थी और स्वयं अपनी स्त्रीको भी अगर ऐसा आचरण करते देखता, तो वह मर्माहत होता—सो बात भी नहीं। परन्तु आज उसकी इतने दिनोंकी

धारणाको इन अन्तिम पाँच दिनोंने मानों धक्के देकर शिथिल कर दिया। आज शामकी गाड़ीसे उसके कलकत्ता रवाना होनेकी बात थी, नौकर-चाकर चीज-वस्त बाँधकर तैयारी कर रहे थे, कुछ ही घंटोंकी देरी थी; इतनेमें सन्तोषने आकर ओटमेंसे कहा, "मौसीजी जीमने बुला रही हैं।"

"इस वक्त?"

"हाँ," कहकर संतोष वहाँसे खिसक दिया।

विजयने भीतर जाकर देखा कि बरामदेमें बाकायदा आसन बिछाकर भोजनके लिए ठौर कर दिया गया है। मौसीकी नार पकड़कर कुमार लटक रहा था, उसके हाथसे अपनेको छुड़ाकर अनुराधा रसोईघरमें घुस गई।

आसनपर बैठकर विजयने कहा, "इस वक्त यह क्या?"

भीतरसे अनुराधाने कहा "जरा खिचड़ी बना रक्खी है, खाते जाइए।"

जवाब देते समय आज विजयको अपना गला जरा साफकर लेना पड़ा, बोला, "बेवक्त आपने क्यों तकलीफ की? इसकी अपेक्षा चार-छै पूड़ियाँ ही उतार देतीं; तो काम चल जाता।"

अनुराधाने कहा, "पूड़ी तो आप खाते नहीं। घर पहुँचते-पहुँचते रातके दो-तीन बज जायँगे। बगैर खाए उपासे जाते, तो क्या मुझे कम तकलीफ होती? बराबर खयाल आता रहता कि लड़का गाड़ीमें बिना खाये-पिये यों ही सो गया होगा।"

विजय चुपचाप खाता रहा: फिर बोला, "विनोदको कह दिया है, वह आपकी देख रेख करता रहेगा। जितने दिन आप इस मकानमें हैं, आपको किसी तरहकी तकलीफ न होगी।"

फिर वह कुछ देर चुप रहकर कहने लगा, "और एक बात आपसे कहे जाता हूँ। अगर कभी भेंट हो, तो गगनसे कह दीजिएगा कि मैंने उसे माफ कर दिया, पर इस गाँवमें अब वह न आये। आनेसे माफ न करूँगा।"

"कभी भेंट हुई तो उनसे कह दूँगी।" इतना कहकर अनुराधा चुप हो गई, फिर क्षण-भर बाद बोली, "मुश्किल है कुमारके मारे। आज वह किसी तरह जानेको राजी ही नहीं होता। और जाना क्यों नहीं चाहता, सो भी नहीं बताता।"

विजयने कहा, "इसलिए नहीं बताता कि वह खुद नहीं जानता और मन ही मन यह भी समझता है कि वहाँ जानेसे उसे तकलीफ होगी।"

"तकलीफ क्यों होगी ?"

"उस घरका यही नियम है। पर हो तकलीफ, आखिर इतना बड़ा हुआ तो वह वहीं है।"

"उसे ले जानेकी जरूरत नहीं। यहीं रहने दीजिए मेरे पास।"

विजयने हँसते हुए कहा, "मुझे कोई आपत्ति नहीं, मगर ज्यादासे ज्यादा एक महीने रह सकता है, उससे ज्यादा तो रह नहीं सकता,-इससे लाभ क्या!"

दोनों ही मौन रहे। अनुराधाने कहा, "इसकी जो विमाता आयेंगी, सुना है कि वे शिक्षित हैं।"

"हाँ, वे बी० ए० पास हैं।"

"पर बी० ए० तो उसकी ताईने भी पास किया है ?"

"जरूर किया है। मगर बी० ए० पास करानेवाली किताबोंमें देवरौतको लाड़-प्यारसे रखनेकी बात नहीं लिखी। इस विषयकी परीक्षा उन्हें नहीं देनी पड़ी।"

"और बीमार सास-ससुरकी ? क्या यह बात भी किताबमें नहीं लिखी रहती ?"

"नहीं। यह प्रस्ताव और भी ज्यादा हास्यकर है।"

"हास्यकर न हो, ऐसी भी कोई बात है ?"

"है। जरा भी किसी तरहकी शिकायत न करना ही हमारे समाजका सुभद्र विधान है।"

अनुराधा क्षण-भर मौन रहकर बोली, "यह विधान आप ही लोगोंमें रहे। पर जो विधान सबके लिए एक-सा है, वह यह है कि लड़केसे बढ़कर बी० ए० पास नहीं है। ऐसी बहूको घर लाना अनुचित है।"

"लेकिन लाना तो किसी न किसीको पड़ेगा ही। हम लोग जिस समाजकी आबहवामें रह रहे हैं, वहाँ बी० ए० पास बगैर इज्जत भी नहीं बचती, मन भी नही मानता और शायद घर-गृहस्थी भी नहीं चलती। मा-बाप-मरे बहनौतके लिए पेड़के नीचे रहना मंजूर करनेवाली बहूके साथ हम बनवास कर सकते हैं, पर समाजमें नहीं रह सकते।"

अनुराधाका स्वर क्षण-भरके लिए तीखा हो उठा, बोली, "नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। आप इसे किसी निर्दय विमाताके हाथ नहीं सौंप सकते।"

विजयने कहा, "सो कोई डर नहीं। कारण, सौंप देनेपर भी कुमार हाथसे फिसलकर नीचे आ गिरेगा। पर इसके मानी यह नहीं कि वे निर्दय ही हैं,—अपनी भावी पत्नीकी तरफसे मैं आपकी बातका तीव्र प्रतिवाद करता हूँ। मार्जित-रुचि-सम्मत उदास अवहेलनासे उनमें मुरझाई हुई आत्मीयताकी बर्बरता नाम मात्रको भी नहीं। यह दोष उन्हें आप न दीजिए।"

अनुराधा हँसकर बोली, "प्रतिवाद आप जितना चाहें, करें: पर मुझे मुरझाई हुई आत्मीयताके मानी तो जरा समझा दीजिए ?"

विजयने कहा, "यह हम लोगोंके बड़े सर्किलका पारिवारिक बन्धन है। उसका 'कोड' ही अलग है, और चेहरा भी जुदा है। उसकी जड़ रस नहीं खींचती, पत्तोंका रंग हरा भी नहीं होने पाता कि पिलाई आने लगती है। आप गँवई-गाँवके गृहस्थ घरकी लड़की हैं—स्कूल-कालेजमें पढ़कर पास नहीं हुई: पार्टी या पिकनिकमें शरीक नहीं हुई; लिहाजा इसका निगूढ़ अर्थ आपको मैं समझा नहीं सकता: सिर्फ इतना-सा आभास दे सकता हूँ कि कुमारकी विमाता आकर उसे जहर पिलानेकी भी तैयारी न करेगी, और न चाबुक हाथमें लिये उसके पीछे ही पड़ जायगी, क्योंकि वह मार्जित-रुचि-विरुद्ध आचरण है। इसलिए, इस बारेमें आप निश्चिन्त हो सकती हैं।"

अनुराधाने कहा, "मैं उनकी बात छोड़े देती हूँ, पर आप वचन दीजिए कि खुद भी देखेंगे-भालेंगे, मेरी सिर्फ इतनी ही बिनती है।"

विजयने कहा, "वचन देनेको तो जी चाहता है; पर मेरा स्वभाव और तरहका है, आदत भी दुनियासे अलग है। आपके आग्रहकी याद करके बीच-बीचमें देखने-भालनेकी कोशिश करता रहूँगा; मगर जितना आप चाहती हैं, उतना हो सकेगा—ऐसा तो नहीं मालूम होता। अच्छा, अब मैं जीम चुका, जाता हूँ। चलनेकी तैयारी करनी है।"

इतना कहकर वह उठ बैठा। बोला, "कुमार आपहीके पास रहेगा, छोड़नेका दिन आ जाय, तो उसे विनोदके साथ कलकत्ता भेज दीजिएगा। जरूरत महसूस करें, तो उसके साथ सन्तोषको भी बिना किसी संकोचके भेज दीजिएगा। शुरू-शुरूमें आपके साथ जैसा सलूक किया है, ठीक वैसी ही मेरी प्रकृति नहीं है। चलते वक्त फिर आपको भरोसा दिये जाता हूँ कि मेरे घर कुमारसे ज्यादा अनादर सन्तोषका नहीं होगा।"

÷ + + ÷

मकानके सामने घोड़ा-गाड़ी खड़ी है, चीज-वस्तु लादी जा चुकी है, विजय गाड़ीपर चढ़ना ही चाहता था कि कुमारने कहा, "बापूजी मौसीजी बुला रही हैं।"

अनुराधा सदर दरवाजेके पास खड़ी थी, बोली, "प्रणाम करनेके लिए बुलवा लिया, फिर कब कर सकूँगी, मालूम नहीं।" कहकर उसने गलेमें आँचल डालकर दूरसे प्रणाम किया। फिर उठके खड़ी हो गई और कुमारको अपनी गोदके पास खींचकर बोली, "दादीजीसे कह दीजिएगा कि सोच फिकर न करें। जितने भी दिन मेरे पास रहेगा, किसी तरहका अनादर न होगा।"

विजयने हँसकर कहा, "विश्वास होना मुश्किल है।"

"मुश्किल किसके लिए है? क्या आपके लिए भी?" कहकर वह हँस दी, और दोनोंकी चार आँखे हो गई। बिजयने स्पष्ट देख लिया कि उसके पलक भीगे हुए हैं। मुँह झुकाकर उसने कहा, "किन्तु कुमारको ले जाकर तकलीफ़ न दीजिएगा। फिर कहनेका मौका नहीं मिलेगा, इसीसे बराबर कहे रखती हूँ। आपके घरकी बात याद आते ही उसे भेजनेको जी नहीं चाहता।"

"तो मत भेजिएगा।"

उत्तरमें वह एक साँस दबा कर चुप रह गई।

विजयने कहा, "जानेके पहले आपको अपने वायदेकी बात फिर एक बार याद दिला जाऊँ। आपने वचन दिया है कि कभी कोई जरूरत पड़ेगी तो मुझे चिट्ठी लिखेंगीं।"

"मुझे याद है। मैं जानती हूँ कि गंगोली महाशयसे मुझे भिखारिनकी तरह ही माँगना होगा, मनके सम्पूर्ण धिक्कारको तिलांजलि देकर ही माँगना होगा; पर आपके पास वह बात नहीं। जो चाहूँगी बिना किसी संकोचके आसानीसे माँग लूँगी।"

"पर याद रहे!" कहकर विजय जाना ही चाहता था कि अनुराधाने कहा, "तो आप भी एक वचन देते जाइए। कहिए कि जरूरत पड़नेपर मुझे भी जताइएगा?"

"जतानेके लायक मुझे क्या जरूरत पड़ेगी अनुराधा?"

"सो कैसे बताऊँ। मेरे पास और कुछ नहीं है, पर जरूरत आ पड़नेपर हृदयसे सेवा तो कर सकती हूँ।"

" आपको वे करने देंगे ? "

" मुझे कोई भी नहीं रोक सकता । "

७

कुमार नहीं आया, सुनकर विजयकी मां मारे आतंकके सिहर उठीं— " यह कैसी बात है रे ? जिसके साथ लड़ाई है, उसीके पास लड़केको छोड़ आया ? "

विजयने कहा, " जिसके साथ लड़ाई थी, वह पातालमें जाके छिप गया है मा, किसकी मजाल कि उसे ढूँढ़ निकाले ? तुम्हारा पोता अपनी मौसीके पास है । कुछ दिन बाद आ जायगा । "

" अचानक उसकी मौसी कहाँसे आ गई ? "

विजयने कहा, " भगवानके बनाये हुए संसारमें अचानक कौन कहाँसे आ पहुँचता है मा, कोई बता नहीं सकता । जो तुम्हारे रुपये-पैसे लेकर डुबकी लगा गया है, यह उसी गगन चटर्जीकी छोटी बहन है । मकानसे उसीको निकाल भगानेके लिए लाठी-सोटा और पियादे-दरवान लेकर युद्ध करने गया था, पर तुम्हारे पोतेने सब गड़बड़ कर दिया । उसने उसका ऐसा दामन पकड़ा कि दोनोंको एक साथ बगैर निकाले उसे निकाला ही नही जा सकता था । "

माने अन्दाजसे बातको समझकर पूछा, " कुमार मालूम होता है उसके बसमें हो गया है ? उस लड़कीने उसे खूब लाड़-प्यार किया होगा शायद ? बेचारेको लाड़-प्यार तो मिला नहीं कभी । " इतना कहकर उन्होंने अपनी अस्वस्थताकी याद करके एक गहरी साँस ले ली ।

विजयने कहा, "मैं तो बाहर रहता था, घरके भीतर कौन किसे लाड़-प्यार कर रहा है, मैंने आँखोंसे देखा नहीं । पर जब चलने लगा तो देखा कि कुमार अपनी मौसीको छोड़कर किसी तरह आना ही नहीं चाहता । "

माका सन्देह इतनेपर भी न मिटा, कहने लगीं, " गँवई गाँवकी लड़कियाँ बहुत तरहकी बातें जानती हैं । साथ न लाकर तैंने अच्छा नहीं किया । "

विजय ने कहा, " तुम खुद गँवई गाँवकी लड़की होकर गँवई-गाँवके विरुद्ध शिकायत कर रही हो मा ? अन्तमें तुम्हारा विश्वास शहरकी लड़कियोंपर ही हो गया क्या ? "

" शहरकी लड़कियाँ ? उनके चरणोंमें लाखों प्रणाम ! " यह कहकर माने दोनों हाथ जोड़कर माथेसे लगा लिये ।

विजय हँस दिया। माने कहा "हँसता क्या है रे, मेरा दुःख सिर्फ मैं ही जानती हूँ, और जानते हैं वे!" कहते कहते उनकी आंखें डबडबा आई, बोली; "हम लोग जहाँकी हैं, वे गाँव क्या अब रहे हैं बेटा? जमाना बिलकुल ही बदल गया है।"

विजयने कहा "बहुत बदल गया है, पर जबतक तुम लोग जीती हो, तब तक शायद तुम्ही लोगोंके पुण्यसे वे बने रहेंगे मा, बिलकुल लोप नहीं होगा उनका। उसीकी थोड़ी-सी झाकी अबकी देख आया हूँ। पर तुम्हें तो वह चीज दिखाना मुश्किल है, यही दुःख रह गया मनमें।"—इतना कहकर वह आफिस चला गया। आफिसके कामके तकाजेसे ही उसे यहाँ चला आना पड़ा है।

\+ \+ \+

शामको आफिससे लौटकर विजय भइया-भाभीके साथ भेंट करने गया। जाकर देखा कि कुरुक्षेत्रका युद्धकाण्ड चल रहा है। शृङ्गारकी चीज वस्त इधर उधर बिखरी पड़ी हैं, भइया आराम-कुर्सीके हत्थेपर बैठे जोर-जोरसे कह रहे हैं, "हरगिज नहीं। जाना हो, अकेली चली जाओ। ऐसी रिश्तेदारीपर मैं—" इत्यादि।

अकस्मात् विजयको देखते ही प्रभा एक साथ जोरसे रो पड़ी। बोली, "अच्छा लालाजी, तुम्हीं बताओ, उन लोगोंने अगर सितांशुके साथ अनीताका व्याह पक्का कर दिया तो इसमें मेरा क्या दोष? आज उसकी सगाई पक्की होगी—और ये कहते हैं कि मैं नहीं जाऊँगा। इसके मानी तो यही हुए कि मुझे भी नहीं जाने देंगे।"

भइया गरज उठे, "क्या कहना चाहती हो तुम, तुम्हें मालूम नहीं था? हम लोगोंके साथ ऐसी जालसाजी करनेकी क्या जरूरत थी इतने दिनों तक?"

माजरा क्या है, सहसा समझ न सकनेसे विजय हतबुद्धि-सा हो गया, पर समझनेमें ज्यादा देर भी नहीं लगी। उसने कहा, "ठहरो, ठहरो। क्या हुआ बताओ भी तो? अनीताके साथ सितांशु घोषालका व्याह होना तय हो गया है, यही तो? आज ही सगाई पक्की होगी? I am thrown Completely over-board!" (मैं पूरी तरहसे समुद्रमें फेंक दिया गया!)

भइयाने हुंकारके साथ कहा, "हूँ! और ये कहना चाहती हैं कि इन्हें कुछ मालूम ही नहीं!"

प्रभा रोती हुई बोली, "भला मैं क्या कर सकती हूँ लालाजी? भइया

मौजूद हैं, मा हैं, लड़की खुद सयानी हो चुकी है—अगर वे अपना वचन भंग कर रहे हैं, तो इसमें मेरा क्या दोष?"

भइयाने कहा, "दोष यही कि वे धोखेबाज हैं, पाखण्डी और झूठे हैं। एक तरफ जबान देकर दूसरी तरफ छिपे-छिपे जाल फैलाये हुए बैठे थे। अब लोग हँसेंगे और कानाफूसी करेंगे,—मैं क्लबमें मारे शरमके मुँह नहीं दिखा सकूँगा।"

प्रभा उसी तरह रुआसे स्वरमें कहने लगी, "ऐसा क्या कहीं होता नहीं? इसमें तुम्हारे शरमानेकी कौन-सी बात है?"

"मेरे शरमानेकी वजह यह है कि वह तुम्हारी बहन है। दूसरे मेरे सुसरालके सबके सब धोखेबाज हैं, इसलिए। उसमें तुम्हारा भी एक बड़ा हिस्सा है, इसलिए।"

अब तो भइयाके चेहरेकी तरफ देखकर विजय हँस पड़ा, परन्तु उसी वक्त उसने झुककर प्रभाके पैरोंकी धूल माथेसे लगाकर प्रसन्न मुखसे कहा, "भाभी, भइया चाहे जितना भी क्यों न गरजें, मैं गुस्सा या अफसोस तो करूँगा ही नहीं, बल्कि, सचमुच ही अगर इसमें तुम्हारा हिस्सा हो, तो मैं तुम्हारा चिर-कृतज्ञ रहूँगा।"

फिर भइयाकी तरफ मुड़कर कहा, "भइया, तुम्हारा गुस्सा होना सचमुच बड़ा अन्याय है। इस मामलेमें जबान देनेके कोई मानी नहीं होते, अगर उसे बदलनेका मौका मिले। ब्याह तो कोई बच्चोंका खेल नहीं है। सितांशु विलायतसे आई. सी. एस. होकर लौटा है, उच्च श्रेणीका आदमी ठहरा। अनीता देखनेमें सुन्दर है, बी० ए० पास है—और मैं? यहाँ भी पास नहीं कर सका, विलायतमें भी सात आठ साल बिताकर एक डिग्री हासिल नहीं कर सका—और अब लकड़ीकी दूकानपर लकड़ी बेचकर गुजर करता हूँ, न तो पद-गौरव है, न कोई खिताब है। इसमें अनीताने कोई अन्याय नहीं किया, भइया!"

भइयाने गुस्सेके साथ कहा, "हजार बार अन्याय किया है। तू क्या कहना चाहता है कि तुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ?"

विजयने कहा, "भइया, तुम बड़े हो, पूज्य हो,—तुमसे झूठ नहीं बोलूँगा—तुम्हारे पैर छूकर कहता हूँ, मुझे जरा भी दुःख नहीं। अपने पुण्यसे तो नहीं,—किसके पुण्यसे बचा, सो भी नहीं मालूम, पर जान पड़ता है कि

मैं बच गया। भाभी, चलो मैं तुम्हें ले चलता हूं। भइया चाहें तो नाराज होकर घरमें बैठे रहें, मगर हम तुम, चलो चलें, तुम्हारी बहनकी सगाईमें भर-पेट खा आवें।"

प्रभाने उसके चेहरेकी ओर देखकर कहा, "तुम मेरा मजाक उड़ा रहे हो लालाजी?"

"नहीं भाभी, मजाक नहीं उड़ाता। आज मैं अन्तःकरणसे तुम्हारा आशीर्वाद चाहता हूँ,—तुम्हारे वरदानसे भाग्य मेरी तरफ फिरसे मुँह उठाकर देखे। पर अब देर न करो,—तुम कपड़े पहन लो, मैं भी आफिसके कपड़े बदल आऊँ।" कहकर जल्दीसे वह जाना चाहता था कि भइया कह उठे, "तेरे लिए निमंत्रण नहीं है, तू वहाँ कैसे जायगा!"

विजय ठिठककर खड़ा हो गया, बोला, "सो तो ठीक है। शायद वे शरमिन्दा होंगे। पर बिना बुलाये कहीं भी जानेमें आज मुझे कोई संकोच नहीं। इच्छा हो रही है कि दौड़ा जाऊँ और कह आऊँ कि अनीता, तुमने मुझे धोखा नहीं दिया, तुमपर न मुझे कोई गुस्सा है, न कोई जलन है,—मेरी प्रार्थना है कि तुम सुखी होओ। भइया, मेरी प्रार्थना मानों, नाराजी न रक्खो, भाभीको ले जाओ; कमसे कम मेरी तरफसे ही सही, अनीताको आशीर्वाद दे आओ तुम दोनों।"

भइया और भाभी दोनो ही हतबुद्धि-से होकर उसकी तरफ देखते रहे। सहसा दोनोंकी निगाह विजयके चेहरेपर पड़ी—उसके चेहरेपर व्यंग्यका सचमुच ही कोई चिह्न नहीं था, क्रोध या अभिमानकी लेश मात्र छाया उसके कंठस्वरपर नहीं थी,—सचमुच ही मानों किसी सुनिश्चित विपत्तिके फन्देसे बच जानेसे उसका मन अकृत्रिम पुलकसे भर गया था। आखिर प्रभा अनीताकी बहन ठहरी, बहनके लिए यह इंगित उपादेय नहीं हो सकता। अपमानके धक्केसे प्रभाका हृदय सहसा जल उठा, उसने मानों कुछ कहना भी चाहा, पर गला रुँध गया।

विजयने कहा, "भाभी, अपनी सब बातें कहनेका अभी समय नहीं आया, कभी आयेगा या नहीं, सो भी नहीं मालूम,—लेकिन अगर आया किसी दिन, तो उस दिन तुम भी कहोगी कि लालाजी तुम भाग्यवान् हो तुम्हें मैं आशीर्वाद देती हूँ।"

महेश

१

गाँवका नाम है काशीपुर। छोटा-सा गाँव और जमींदार उससे भी छोटा, मगर फिर भी उसका दबदबा ऐसा कि कोई प्रजा चूँ तक नहीं कर सकती।

छोटे लड़केकी जन्म-तिथिकी पूजा थी। पूजा समाप्त करके तर्करत्न महाशय दो पहरके वक्त घर लौट रहे थे। वैशाख खतम होनेको है, पर आकाशमें कहीं बादलकी छाया तक नहीं,—अनावृष्टिके आकाशसे मानों आग झर रही हो।

सामनेका दिगन्तव्यापी मैदान कड़ी धूपसे सूखकर फटने लगा है, और उन लाखों दरारोंमेंसे धरतीकी छातीका खून मानों धुआँ बनकर उड़ा जा रहा है। अग्निशिखा-सी उसकी लहराती हुई ऊर्ध्वगतिकी तरफ देखनेसे सिर चकराने लगता है—जैसे नशा आ गया हो।

उस मैदानके किनारे रास्तेपर गफ़ूर जुलाहेका घर है। उसकी मिट्टीकी दीवाल गिर गई है और आँगन सड़कसे आ मिला है; मानों अन्तःपुरकी लज्जा और आबरू पथिकोंकी करुणाके आगे आत्म समर्पण करके निश्चिन्त हो गई हो।

सड़कके किनारे एक पेड़की छायामें खड़े होकर तर्करत्नने पुकारा—"ओ रे ओ गफ़ूर, घरमें है क्या ?"

उसकी दसेक सालकी लड़कीने दरवाजेके पास आकर कहा, "क्यों,—बाबूको तो बुखार आ गया है।"

"बुखार ! बुला हरामजादेको। पाखंडी म्लेच्छ कहींका !"

शोर-गुल सुनकर गफ़ूर मियाँ घरसे निकलकर बुखारमें काँपता हुआ बाहर आ खड़ा हुआ। फूटी दीवारसे सटा हुआ एक पुराना बबूलका पेड़ है, उसकी डालसे एक बैल बँधा हुआ है। तर्करत्नने उसकी तरफ इशारा करके कहा, "यह क्या हो रहा है, सुनूँ तो सही ? यह हिन्दुओंका गाँव है, जमींदार ब्राह्मण हैं, सो भी कुछ होश है ?"

उनका चेहरा गुस्से और धूपसे सुर्ख हो रहा था, लिहाजा उस मुंहसे गरम और तीखी बात ही निकलेगी: मगर कारण न समझ सकनेसे गफूर सिर्फ मुहँकी तरफ देखता रहा।

तर्करत्नने कहा, "सबेरे जाते वक्त देख गया था, बँधा था, और दोपहरको लौटते वक्त देख रहा हूँ कि ज्योंका त्यों बँधा हुआ है! गोहत्या होनेपर मालिक साहब तुझे जिन्दा गाड़ देंगे। वे ऐसे ब्राह्मण नहीं हैं!"

"क्या करूँ पण्डितजी महाराज, बड़ी लाचारीमें पड़ गया हूँ। कई दिनसे बुखारमें पड़ा हूँ, पगहा पकड़कर थोड़ा-बहुत चारा लाता, सो होता नहीं,—चक्कर खाकर गिर पड़ता हूँ।'

"तो खोल दे, आप ही चर आयेगा।"

"कहाँ छोड़ आऊँ पंडितजी, लोगोंके धान अभी सब झाड़े नहीं गये हैं,—खलिहानमें पड़े हुए हैं: पुआल भी अभी तक ज्योंका त्यों पड़ा है: और मैदान तो सब सूखकर सफाचट हो रहा है, कहीं भी मुट्ठी-भर घास नहीं। किसीके धानमें मुँह मार दे, किसीका पुआल तहस-नहस कर डाले, कोई ठीक नहीं,—छोड़ूँ तो कैसे छोड़ूँ महाराज?"

तर्करत्नने जरा गरम होकर कहा, "नहीं छोड़ता तो कहीं छाँहमें बाँधकर दो आँटी पुआल ही डाल दे, चबाया करेगा तबतक तेरी। लड़कीने भात नहीं राँधा? माँड़-पानी दे दे थोड़ा-सा, पी लेगा।"

गफूरने कुछ जवाब नहीं दिया। निरुपायकी भाँति तर्करत्नके मुँहकी तरफ देखता रहा, उसके मुँहसे एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा।

तर्करत्नने कहा, "सो भी नहीं है क्या? पुआल सब क्या कर दिया? हिस्सेमें जो कुछ मिला था सो बेच-बूचकर पेटाय स्वाहा! बैलके लिए भी थोड़ा-सा नहीं रक्खा! कसाई कहींका!"

इस निष्ठुर अभियोगसे गफूरकी मानों जबान बन्द हो गई। क्षण-भर बाद उसने आहिस्तेसे कहा "जो कुछ हिस्सेमें मिला था, सो मालिक साहबने पिछले बकायामें रखवा लिया। रो-बिलखकर हाथ-पाव जोड़के कहा, "बाबू साहब, हाकिम हैं आप, आपका राज्य छोड़कर भाग थोड़े ही सकता हूँ। मुझे थोड़ा-सा पुआल दे दीजिए। छप्पर छाना है, एक कोठरी है, बाप-बेटीका रहना है, सो भी खैर इस साल ताड़-पत्तोंसे गुजर कर लूँगा। लेकिन मेरा महेश भूखों मर जायगा।"

तर्करत्नने हँसकर कहा "ओःफ्-हो! और आपने शौकसे इसका नाम रख छोड़ा है महेश! हँसी आती है!"

मगर यह व्यंग्य गफूरके कानोंमें नहीं गया, वह कहने लगा, "लेकिन हाकिमकी मेहरबानी नहीं हुई। दो महीनेकी खुराक लायक धान हम लोगोंको दे दिया, लेकिन पुआल सब हिसाबमें ले लिया, इस बेचारेको एक तिनका तक नहीं मिला—" यह कहते-कहते उसका गला भर आया। परन्तु तर्करत्नको उसपर करुणा नहीं आई। बोले, "अच्छा आदमीहै तू तो! पहलेसे ले रक्खा है, देगा नहीं? जमींदार क्या तुझे अपने घरसे खिलायेगा? अरे तुम लोग तो राम-राज्यमें बसते हो,—आखिर कौम तो नीच ही ठहरी, इसीसे बुराई करता फिरता है!"

गफूरने लज्जित होकर कहा, "बुराई मैं क्यों करने लगा महाराज, उनकी बुराई हम लोग नहीं करते। लेकिन दूँ कहाँसे बताइए? चार बीघे खेत हिस्सेमें जोतता हूँ, पर लगातार दो साल अकाल पड़ गया, खेतका धान खेतमें सूख गया,—बाप बेटीको दोनों छाक भर-पेट खानेको भी नहीं मिलता। घरकी तरफ देखिए, बरसा होती है तो बिटियाको लेकर एक कोनेमें बैठके रात बितानी पड़ती है, पैर फैलाकर सोनेकी भी जगह नहीं। महेशकी तरफ देखिए, हड्डियाँ निकल आई हैं,—दे न दीजिए महाराज, थोड़ा-सा पुआल उधार दे दीजिए, दो-चार दिन इसे भर-पेट खिला दूँ—" कहते-कहते ही वह धप-से ब्राह्मणके पैरोंके पास बैठ गया। तर्करत्न महाशय तीरकी तरह दो कदम पीछे हटकर बोल उठे, "अरे मर, छू लेगा क्या?"

"नहीं महाराज, छुऊँगा क्यों, छुऊँगा नहीं। इस साल दे दीजिए महाराज, थोड़ा-सा पुआल दे दीजिए। आपके यहाँ चार-चार टालें लगी हुई हैं, उस दिन मैं देख आया हूँ,—थोड़ा-सा दे देनेसे आपको कुछ मालूम भी न होगा। बड़ा सीधा जीव है—मुँहसे कुछ कह नही सकता, सिर्फ टुकर-टुकर देखता रहता है, और आँखसे आँसू डालता रहता है।"

तर्करत्नने कहा "उधार तो ले लेगा, पर अदा कैसे करेगा, सो तो बता?"

गफूरने आशान्वित होकर व्यग्रस्वरमें कहा "जैसे बनेगा, मै चुका दूँगा महाराजजी, आपको धोखा न दूँगा।"

तर्करत्न महाशयने मुँहसे एक प्रकारका शब्द करके गफूरके व्याकुल कंठका अनुकरण करते हुए कहा "धोखा नहीं दूँगा! जैसे बनेगा, चुका दूँगा!

रसिक नागर बन रहा है ! चल-चल हट, रास्ता छोड़ । घर जाना है, बहुत अबेर हो गई है ।"

इतना कहकर मुसकराते हुए कदम बढ़ाया ही था कि अचानक डरसे पीछे हटते हुए गुस्सेमें आकर कहने लगे, "अरे मर, सींग हिलाकर मारने आ रहा है, सींग मारेगा क्या ?"

गफ़ूर उठके खड़ा हो गया। पंडितजीके हाथमें फल-मूल और भीगे चावलोंकी पोटली थी, उसे दिखाते हुए गफ़ूरने कहा "गन्ध मिल गई है न उसे, इसीसे कुछ खानेको माँगता है—"

"खानेको माँगता है ? ठीक, जैसा खुद गँवार किसान है, वैसा ही बैल है ! पुआल तो नसीब नहीं होता, केले-चावल खानेको चाहिए ! हटा हटा, रास्तेसे एक तरफ हटाकर बाँध। कैसे सींग हैं— किसी दिन किसीकी जान न ले ले !" कहते हुए पंडितजी एक तरफसे बचकर निकल गये।

गफ़ूर उनकी तरफसे दृष्टि हटाकर कुछ देरतक महेशकी तरफ एकटक देखता रहा। उसकी गंभीर काली आँखें वेदना और भूखसे भरी थीं, उसने कहा "तुझे दिया नहीं मुट्ठी-भर ? उन लोगोंके पास बहुत है, फिर भी देते नहीं किसीको। न दें—" कहते-कहते उसका गला रुँध आया, और आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। महेशके पास आकर वह चुपचाप उसके गलेपर, माथे और पीठपर, हाथ फेरता हुआ चुपके-से कहने लगा, "महेश, तू मेरा लड़का है, तू हम लोगोंको आठ साल तक खिलाता-पिलाता रहा है, अब बूढ़ा हो गया है, तुझे मैं भर-पेट खिला भी नहीं सकता,—लेकिन तू तो जानता है कि तुझे मैं कितना चाहता हूँ।"

महेशने इसके उत्तरमें सिर्फ गरदन बढ़ाकर आरामसे आँखें मींच लीं। गफ़ूर अपने आँसू महेशकी पीठपर पोंछता हुआ उसी तरह अस्फुट स्वरमें कहने लगा, "जमींदारने तेरे मुँहका कौर छीन लिया,—मसानके पास जो चरनेकी जगह थी, उसे भी पैसेके लोभसे ठेकेपर उठा दिया, ऐसे अकालमें तुझे कैसे जिलाये रक्खूँ बता ? छोड़ देनेसे तू दूसरोंकी टालपर मुँह मारेगा, लोगोंके केलेके पेड़ तोड़कर खा जायगा,—तेरे लिए अब मैं क्या करूँ ? देहमें अब तेरे ताकत भी नहीं, गाँवका कोई भी अब तुझे चाहता नहीं— लोग कहते हैं अब तुझे बेच देना चाहिए—" मन ही मन इन शब्दोंके उच्चारण करते ही उसकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। उन्हें हाथसे

पोंछकर वह इधर-उधर देखने लगा, फिर फूटे घरके छप्परसे थोड़ा-सा पुराना मैला-भद्दा पुआल खींच लाया और उसे महेशके सामने रखकर धीरेसे कहने लगा, "ले, जल्दीसे थोड़ा बहुत खा ले, देर होनेसे—फिर।"

"बापू?"

"क्यों बिटिया?"

"आओ, भात खा जाओ।" कहती हुई अमीना घरसे निकलकर दरवाजेपर आ खड़ी हुई। क्षण-भर देखकर उसने कहा, "महेशको फिर छप्परका पुआल खिला रहे हो बापू?"

ठीक इसी बातका उसे डर था, लज्जित होकर बोला, "सड़ा सड़ाया पुआल है बिटिया, अपने-आप झर-झरके गिर रहा था।"

"मैं जो भीतरसे सुन रही थी बापू, तुम खींचके निकाल रहे थे?"

"नहीं बिटिया, ठीक खींचके नहीं निकाला—"

"लेकिन दीवार जो गिर जायगी बापू—"

गफूर चुप रहा। सिर्फ एक कोठरीके सिवा और सब टूट-फूट गया है और इस तरह करनेसे अगली बरसातमें वह भी नहीं टिक सकती, यह बात उससे ज्यादा और कौन जानता है! और, इस तरह और कितने दिन कट सकते हैं!

लड़कीने कहा, "हाथ-पाँव धोकर भात खा जाओ बापू, मैं परोस चुकी हूँ।"

गफूरने कहा, "माँड़ तो जरा दे जा बिटिया, महेशको पिला-पिलूकर निरचू होकर खाने बैठूँगा।"

"माँड़ तो आज नहीं रहा बापू, हँड़ियामें ही रह गया।"

"नहीं है?" गफूर चुप हो रहा। ऐसे कष्टके दिनोंमें जरा भी कोई चीज बिगाड़ी नहीं जा सकती, इस बातको दस सालकी लड़की भी समझ गई है। हाथ-पाँव धोकर वह कोठरीके भीतर जाके खड़ा हो गया। एक पीतलकी थालीमें पिताके लिए दाल-भात परोसकर बेटी अपने लिए एक मिट्टीकी थालीमें दाल-भात लिये बैठी है। देखकर गफूरने धीरेसे कहा, "अमीना, मुझे तो फिर आज जाड़ा मालूम हो रहा है, बिटिया,—बुखारमें खाना क्या ठीक होगा?"

अमीनाने उद्विग्न चेहरेसे कहा, "मगर तब तो तुमने कहा था कि बड़ी भूख लग रही है ?"

"तब शायद बुखार नहीं था बेटी ।"

"तो उठाके रख दूँ, शामको खा लोगे ?"

गफूरने सिर हिलाकर कहा, "मगर ठण्डा भात खानेसे तो तबीयत और भी खराब हो जायगी अमीना !"

अमीनाने कहा "तो फिर ?"

गफूरने न जाने क्या सोच-विचारकर सहसा इस समस्याकी मीमांसा कर डाली; बोला, "एक काम करो न बेटी, न हो तो महेशको खिला दो ! रातको फिर मेरे लिए मुट्ठी-भर नहीं बना सकोगी, अमीना ?"

उत्तरमें अमीना मुँह उठाकर क्षण-भर चुप-चाप पिताके मुँहकी ओर देखती रही, फिर सिर झुकाकर धीरेसे बोली, "हाँ, बना लूँगी बापू ।"

गफूरका चेहरा सुर्ख हो उठा । बाप और बेटीमें यह जो थोड़ा-सा माया-चारीका अभिनय हो गया, उसे इन दो प्राणियोंके सिवा शायद और भी एक जनने अन्तरीक्षमें रहकर देख लिया ।

२

पाँच-सात दिन बाद, एक दिन बीमार गफूर चिन्तित चेहरेसे अपने आँगनमें बैठा था । उसका महेश कलसे अभी तक लौटा ही नहीं । खुद वह कमजोर है, इसलिए अमीना उसे सबेरेसे चारों तरफ ढूँढ़ती फिर रही है । दिन छुपनेसे पहले उसने वापस आकर कहा, "सुना है बापू, मानिक बाबूने अपने महेशको थानेमें भिजवा दिया है ।"

गफूरने कहा, "चल पगली !"

"हाँ बापू, सच । उनके नौकरने मुझसे कहा कि अपने बापसे जाके कह दे, दरियापुरके मवेशीखानेमें ढूँढ़े जाकर ।"

"क्या किया था उसने ?"

"उनके बगीचेमें घुसकर उसने पेड़-पौधे बरबाद कर दिये हैं ।"

गफूर सन्न होकर बैठ रहा । महेशके सम्बन्धमें उसने अनेक प्रकारकी दुर्घटनाओंकी कल्पना की थी; पर ऐसी आशंका उसे नहीं थी । वह जैसा निरीह है, वैसा ही गरीब; लिहाजा पाड़-पड़ोसी कोई उसे इतनी बड़ी सजा

दे सकता है, इस बातका डर उसे नहीं था। खासकर मानिक घोषसे तो उसे, गऊ और ब्राह्मणोंपर जिसकी भक्ति अन्य गाँवोंतक प्रसिद्ध है, ऐसी आशा नहीं थी।

लड़कीने कहा, "दिन तो छुपा आता है बापू, महेशको लाने नही जाओगे ?"

गफ़ूरने कहा, "नहीं।"

"लेकिन उसने तो कहा है कि तीन दिनके भीतर नहीं छुड़ानेसे पुलिसवाले उसे गौहट्टीमें बेच डालेंगे !"

गफ़ूरने कहा "बेच डालने दो।"

गौहट्टी ठीक क्या चीज है, अमीना इस बातको नहीं जानती थी, परन्तु महेशके सम्बन्धमें उका उल्लेख होते ही उसका बाप कैसा विचिलित हो उठता है, इस बातको उसने बहुत दफे देखा था; परन्तु आज वह और कोई बात न कहकर चुपचाप धीरेसे चला गया।

रातको अँधेरेमें छिपकर गफ़ूर बंशीकी दूकानपर जाकर बोला, "चचा, आज एक रुपया देना होगा।" कहते हुए उसने अपनी पीतलकी थाली बंशीके बैठनेके माचेके नीचे रख दी। इस चीजकी तौल वगैरहसे बंशी परिचत था। पिछले दो सालोंमें उसने इसे पाँच-छः दफे गिरवी रखकर एक-एक रुपया दिया है। इसलिए आज भी उसने कोई आपत्ति नहीं की।

दूसरे दिन फिर महेश अपने स्थानपर बँधा दिखाई दिया। वही बबूलका पेड़, वही रस्सी, वही खूँटी, वही रीती नाँद, वही क्षुधातुर काली आँखोंकी सजल उत्सुक दृष्टि। एक बूढ़ा-सा मुसलमान उसे अत्यन्त तीव्र दृष्टिसे देख रहा था। पास ही एक किनारे दोनों घुटने मिलाये गफ़ूर चुपचाप बैठा था। अच्छी तरह देख-भालकर उस बुड्ढेने चद्दरके छोरमेंसे एक दस रुपयेका नोट निकालकर, उसकी तह खोलके, बार-बार उसे ठीक करते हुए गफ़ूरके पास जाकर कहा, "अब मोल-तोल करके इसे भुनाऊँगा नहीं, यह लो, पूरे दसके दस दिये देता हूँ—लो।"

गफ़ूरने हाथ बढ़ाकर नोट ले लिया, और उसी तरह चुपचाप बैठा रहा। पर जो दो आदमी बुड्ढेके साथ आये थे, उनके पगहापर हाथ लगाते ही गफ़ूर अकस्मात् उठकर स्तर खड़ा हो गया, और उद्धत स्वरमें बोल उठा, "पगहासे हाथ मत लगाना, कहे देता हूँ—खबरदार, अच्छा न होगा !"

वे चौंक पड़े। बुड्ढेने आश्चर्यके साथ कहा, "क्यों?"

गफूरने उसी तरह गुस्सेमें जवाब दिया, "क्यों क्या! मेरी चीज है: मैं नहीं बेचता,—मेरी खुशी!" इतना कहकर उसने नोटको अलग फेंक दिया।

उन लोगोंने कहा, "कल रास्तेमें बयाना जो ले आये थे?"

"यह लो, अपना बयाना वापस ले लो!" कहकर उसने अंटीमेंसे दो रुपया निकालकर झनसे पटक दिये। एक झगड़ा उठ खड़ा होगा, इस ख्यालसे बूढ़ेने हँसकर धीरताके साथ कहा, "दबाव डालकर और दो रुपया ज्यादा लेना चाहते हो, यही तो? दे दो जी, जल-पानके लिए उसकी लड़कीके हाथपर धर दो, दो रुपये। बस, यही तो?"

"नहीं।"

"मगर इससे ज्यादा कोई एक अधेला भी नहीं देगा, मालूम है?" गफूरने जोरसे सिर हिलाकर कहा, "नहीं।"

बुड्ढेने नाराज होकर कहा, "तो क्या? चमड़ेकी ही तो कीमत मिलेगी, नहीं तो, माल इसमें क्या है?"

"तोबा! तोबा" गफूरके मुँहसे अचानक एक भद्दी कड़वी बात निकल गई और दूसरे ही क्षण वह अपनी कोठरीमें जाकर चिल्ला-चिल्लाके धमकी देने लगा कि अगर वे जल्दीसे गाँवके बाहर नही चले गये, तो जमींदारके आदमियोंको बुलवाकर जूते मारकर निकलवा देगा।

शोर गुल सुनकर लोग इकट्ठे हो गये; मगर इतनेमें ज़मींदारके यहाँसे उसका बुलावा आ गया। बात मालिक साहब तक पहुँच गई थी।

कचहरीमें उस समय भले-बुरे ऊँच-नीच सभी तरहके आदमी बैठे थे। शिवशंकर बाबूने आँखें तरेरकर कहा, "गफूरा, तुझे क्या सजा दी जाय, कुछ समझमें नही आता। किसकी जमींदारीमें रहता है, जानता है?"

गफूरने हाथ जोड़कर कहा, "जानता हूँ। हम लोग खाने बिना मर रहे हैं हजूर, नहीं तो आज आप जो भी कुछ जुरमाना करते, मैं 'ना' नहीं करता।"

सभी आश्चर्य-चकित हो गये। इस आदमीको वे जिद्दी और बदमिजाज ही समझते आ रहे थे। गफूरने रुँधे हुए गलेसे कहा, "ऐसा काम अब कभी न करूँगा मालिक साहब!"

इतना कहकर उसने खुद ही दोनों हाथोंसे अपना कान पकड़ा, और आँगनमें एक तरफसे दूसरी तरफ नाक रगड़कर वह खड़ा हो गया।

शिवशंकर बाबूने सदय कंठसे कहा, " अच्छा, जा जा, हो, गया, जा। अब कभी ऐसी मति मत करना। "

बात सुनकर सबके रोएँ खड़े हो गये, और इस विषयमें किसीको रंचमात्र भी सन्देह न रह गया कि ऐसा महापातक होते-होते जो रुक गया, वह सिर्फ मालिक साहबके पुण्यके प्रभावसे और शासनके जोरसे। तर्करत्न महाशय भी उपस्थित थे, उन्होंने गो-शब्दकी शास्त्रीय व्याख्या की, और ऐसी धर्मज्ञान-शून्य म्लेच्छ जातिको गाँवके आस-पास कहीं भी, क्यों नहीं बसने देना चाहिए, इस बातको प्रकट करके लोगोंके ज्ञान-नेत्र खोल दिये !

गफूरने किसी बातका जवाब नहीं दिया, बल्कि उसने इस अपमान और तिरस्कारको यथार्थ प्राप्य समझकर सिर माथे ले लिया, और वह प्रसन्न चित्तसे घर चला गया। उसने पड़ोसीके घरसे माँड़ माँगकर महेशको पिलाया, और उसकी देह, सिर और सींगोंपर बार बार हाथ फेरकर अस्फुट स्वरमें वह न जाने क्या-क्या कहता रहा।

३

जेठ खतम हो चला। रुद्रकी जिस मूर्तिने एक दिन वैशाखके अन्तमें आत्म-प्रकाश किया था, वह कितनी भीषण और कितनी बड़ी कठोर हो सकती है, इस बातका अनुभव आजके आकाशकी तरफ बगैर देखे किया ही नहीं जा सकता। कहीं भी जरा करुणाका आभास तक नहीं। कभी इस रूपका लेशमात्र परिवर्तन हो सकता है, और किसी दिन यह आकाश बदलियोंसे घिरकर सजल दिखाई दे सकता है, इस बातकी आज कल्पना करते भी डर लगता है। समस्त नभस्थलव्यापी जो प्रज्ज्वलित आग लगातार झर रही है, उसका अन्त नहीं, समाप्ति नहीं,— सबको अन्त तक जलाकर खाक किये बगैर वह नहीं रुकनेकी।

ऐसे दिनमें ठीक दोपहरके वक्त गफूर घर लौटा। दूसरेके दरवाजेपर मजूरी करनेकी उसको आदत नहीं: और अभी बुखारको छूटे भी चार-पाँच दिन ही हुए हैं, शरीर कमजोर है, थका हुआ। फिर भी आज वह कामकी तलाशमें निकला था, मगर ऐसी तेज धूपमें जलनेके सिवा और कुछ उसके हाथ नहीं आया। भूख, प्यास और थकानके मारे उसे आँखोंके आगे अँधेरा दिखाई दे रहा था। आँगनमें खड़े होकर उसने आवाज दी, " अमीना, भात हो गया री ?"

लड़की कोठरीमेंसे आहिस्तेसे निकलकर चुपचाप खूँटीके सहारे खड़ी हो गई।

जवाब न पाकर गफ़ूर चिल्लाकर बोल उठा, "हुआ भात? क्या कहा, नहीं हुआ? क्यों, क्यों नहीं हुआ, बता?"

"चावल नहीं हैं बापू।"

"चावल नहीं हैं? सबेरे क्यों नहीं कहा मुझसे?"

"रातको तो कहा था!"

गफ़ूरने मुँह बनाकर उसके स्वरकी नकल करते हुए कहा, "रातको तो कहा था! रातको कहनेसे किसीको याद रहती है?" कर्कश कंठसे उसका क्रोध दूना बढ़ गया। वह चेहरेको अधिकतर विकृत करके कहने लगा, "चावल रहेगा कहाँसे? रोगी बाप खाय चाहे न खाय, धींगड़ी लड़कीको चार-चार पाँच-पाँच दफे गटकनेको चाहिए! आजसे चावल मैं तालेमें बन्द करके रखूँगा। ला, एक लोटा पानी दे,—मारे प्यासके छाती फटी जाती है। कह दे, पानी भी नहीं है।"

अमीना उसी तरह सिर झुकाये खड़ी रही। कुछ देर बाद गफ़ूर जब समझ गया कि घरमें पीनेका पानी तक नहीं, तब तो वह अपनेको सम्हाल न सका। उसने चटसे पास जाकर उसके गालपर तड़-से एक तमाचा जड़ दिया और कहा, "कलमुँही, हरामजादी लड़की, दिन-भर तू किया क्या करती है? इतने लोग मरते हैं, तू क्यों नहीं मरती?"

लड़कीने कुछ जवाब नहीं दिया, मिट्टीकी गागर उठाकर ऐसी कड़ाकेकी धूपमें ही, आँखें पोंछती हुई चुपचाप चल दी। मगर उसके आँखके ओझल होते ही गफ़ूरकी छातीमें शूल-सा चुभने लगा। बिगर माकी इस लड़कीको उसने किस तरह पाल-पोसकर बड़ा किया है, सो वही जानता है।

वह सोचने लगा, उसकी इस स्नेहमयी कार्यपरायण शान्त लड़कीका कोई दोष नहीं है। खेतका जो थोड़ा-सा अनाज था, उसके निबट जानेके बादसे उसे दोनों वक्त भर-पेट खानेको भी नहीं मिलता। किसी दिन एक छाक खाकर रह जाती है, और किसी दिन वह भी नसीब नहीं होता। दिनमें चार-चार पाँच-पाँच दफे खानेकी बात जितनी असम्भव है, उतनी ही झूठ; और घरमें पानी न रहनेका कारण भी उससे छिपा न था। गाँवमें जो दो-तीन तलाब हैं, वे बिल्कुल सूख गये हैं। शिवचरण बाबूके पिछवाड़ेकी पोखरमें

जो थोड़ा-बहुत पानी है भी, सो सबको मिलता नही। और और तालाबोंमें एक-आध जगह गड़हा खोदकर जो-कुछ पानी संचित होता है, उसके लिए छीना-झपटी मच जाती है, और वहाँ भीड़ भी बहुत रहती है। मुसलमान होनेसे वह उनके पास भी नहीं जा सकती। घंटों दूर खड़ी रहनेके बाद, बहुत निहोरे करनेपर कोई दया करके उसके बरतनमें डाल दे, तो वह घर लावे। इस बातको वह जानता था। हो सकता है कि आज पानी न रहा हो, या छीना-झपटीके बीच किसीको लड़कीपर कृपा करनेका मौका ही न मिला हो,—ऐसी ही कोई बात हो गई होगी, यह समझकर उसकी आँखोंमें आँसू भर आये।

इतनेमें जमींदारका पियादा जमदूतकी तरह आँगनमें आ खड़ा हुआ, बोला—"गफूरा, घरमें है क्या?"

गफूरने तीखे स्वरमें उत्तर दिया, 'हूँ। क्यों क्या है?'

"बाबू साहब बुला रहे हैं, चल!"

गफूरने कहा, "अभी मैंने खाया-पीया नहीं, पीछे जाऊँगा।"

इतना जबरदस्त हौसला पियादेसे सहा नहीं गया। उसने एक भद्दा सम्बोधन करके कहा, "बाबूका हुकम है, जूता मारते-मारते घसीट ले जानेका।"

गफूर दूसरी बार अपनेको भूल गया, उसने भी एक कटु शब्द उच्चारण करते हुए कहा, "महारानीके राज्यमें कोई किसीका गुलाम नहीं है। लगान देकर रहता हूँ, मुफ्त नहीं: मैं नहीं जाता।"

मगर संसारमें इतने छोटेके लिए इतने बड़ेकी दुहाई देना सिर्फ व्यर्थ ही नहीं, बल्कि विपत्तिका भी कारण है। इतनी खैर हुई कि इतना क्षीण कण्ठ उतने बड़े कानोंतक पहुँचा नहीं,—नहीं तो उनके मुँहका अन्न और आँखोंकी नींद ही जाती रहती।

इसके बाद क्या हुआ, विस्तारसे कहनेकी जरूरत नहीं: लेकिन घंटे-भर बाद जब वह जमींदारके सदरसे लौटकर चुपचाप पड़ रहा, तब उसका मुँह और आँखें सब फूल रही थीं। उसकी सजाका प्रधान कारण है महेश। उसके घरसे बाहर निकलनेके बाद ही वह पगहा तोड़कर भाग खड़ा हुआ और जमींदारके सहनमें जाकर उसने फूलोंके सारे पौधे नष्ट कर डाले। अन्तमें पकड़नेकी कोशिश की गई, तो वह बाबू साहबकी छोटी लड़कीको पटककर भाग गया। ऐसी घटना यह पहले ही पहल हुई हो, सो बात नहीं,—इसके पहले भी हुई है, पर गरीब होनेसे उसे माफ कर दिया जाता था;

परन्तु प्रजा होकर उसका यह कह देना कि वह लगान देकर रहता है और किसीका गुलाम नहीं, जमींदारसे किसी भी तरह सहा नहीं गया। वहाँ उसने पिटने और बेइज्जत होनेका जरा भी प्रतिवाद नहीं किया, सब-कुछ मुँह बन्द करके सह लिया, और घर आकर भी वह उसी तरह मुँह बन्द करके पड़ा रहा। भूख-प्यासकी बात उसे याद नहीं रही, लेकिन छातीके भीतर मानो आग-सी जलने लगी। इस तरह कितनी देर बीत गई, उसे कुछ होश नहीं, परन्तु आँगनसे सहसा अपनी लड़कीका आर्त्त-कण्ठ कानमें पड़ते ही वह तड़ाकसे उठके खड़ा हो गया और लपका। बाहर जाकर देखता क्या है कि अमीना जमीनपर पड़ी है, उसकी फूटी गागरसे पानी झर रहा है और महेश मिट्टीपर मुँह लगाये मानों मरुभूमिकी तरह पानी सोख-सोखकर पी रहा है। आँखोंके पलक नहीं गिरे, गफूरका होश-हवास जाता रहा। मरम्मतके लिए कल उसने अपने हलका सिरा खोल रखा था, उसीको दोनों हाथोंसे उठाकर उसने महेशके झुके हुए माथेपर जोरसे दे मारा।

एक बार, सिर्फ एक बार महेशने मुँह उठानेकी कोशिश की, उसके बाद उसका भूखा-प्यासा कमजोर शरीर जमीनपर लुढ़क पड़ा। आँखोंसे आँसुओंकी कुछ बूँदें कनपटियोंकी तरफ ढुलक पड़ीं और कानसे थोड़ा-सा खून बह निकला। दो-तीन बार सारा शरीर थरथर कर काँप उठा; फिर सामने और पीछेके पैर जहां तक तन सकते थे, तनाकर महेशने अन्तिम साँस छोड़ दी।

अमीना रो उठीः बोली, "क्या किया बापू, महेश तो अपना मर गया।"

गफूर टससे मस न हुआ, न कुछ जवाब दिया, सिर्फ निर्निमेष दृष्टिसे सामने पड़े हुए महेशकी निमेषहीन गंभीर काली आँखोंकी तरफ़ देखता हुआ पत्थरकी तरह निश्चल खड़ा रहा।

दो घण्टेके भीतर, खबर पाकर, दूसरे गाँवके मोची आ जुटे, और महेशको बाँसमें बाँधकर बीहड़की तरफ़ ले चले। उनके हाथोंमें पैने चमकते हुए छुरे देखकर गफूर सिहर उठा, चटसे उसने आँखें मींच लीं, उसके मुँहसे एक लफ्ज तक नहीं निकला।

मुहल्लेके लोग कहने लगे, "तर्करत्नजीसे व्यवस्था लेनेके लिए जमींदारने आदमी भेजा है—प्रायश्चित्तका खर्च जुटानेमें अब तेरा घर-द्वार तक बिक जायगा!"

गफूरने इन सब बातोंका कोई जवाब नहीं दिया, वह घुटनोंपर मुँह रखकर चुपचाप बैठा रहा।

बहुत रात बीते, गफूरने लड़कीको जगा कर कहा, "अमीना, चल, हम लोग चलें यहाँसे—"

वह बरामदेमें सो रही थी, आँखें मींड़ती हुई उठके बैठ गई, बोली, "कहाँ बापू?"

गफूरने कहा "फुलवाड़ीकी जूट-मिलमें काम करने।"

लड़की आश्चर्यमें पड़ गई और बापका मुँह ताकने लगी। इसके पहले बड़ेसे बड़े दुःखमें भी उसका बाप जूट-मिलमें काम करनेको राजी न हुआ था; कह दिया करता कि वहाँ धर्म नहीं रहता, लड़कियोंकी इज्जत-आबरू नहीं रहती, इत्यादि।

गफूरने कहा "अब देरी मत कर बिटिया, चल, बहुत दूर पैदल चलना है।"

अमीना पानी पीनेका लोटा और पिताके खानेकी पीतलकी थाली साथमें ले रही थी, पर गफूरने मना कर दिया, "ये सब रहने दे बिटिया, इनसे अपने महेशका पिरासचित्त होगा।"

अन्धकारमय गंभीर निशीथमें गफूर लड़कीका हाथ पकड़कर घरसे निकल पड़ा। गाँवमें उसका कोई आत्मीय नहीं था, लिहाजा किसीसे कुछ कहने-सुननेकी भी जरूरत नहीं थी। आँगन पार होकर रास्तेके किनारे उस बबूलके पेड़के नीचे पहुँचते ही वह ठिठककर खड़ा हो गया, और फूट-फूटकर रोने लगा। तारोंसे जड़े हुए काले आसमानकी तरफ मुँह उठाकर वह कहने लगा, "अल्लाह! मेरा महेश प्यासा मर गया। उसके चरने-खाने तकको किसीने ज़मीन नहीं दी। मुझे जितनी चाहे सजा दे लो, मगर जिसने तुम्हारी दी हुई घास और तुम्हारा दिया हुआ प्यासका पानी उसे पीने नहीं दिया, उसका कसूर तुम कभी माफ मत करना।"

पारस

मजूमदारोंका वंश बड़ा वंश है, गाँवमें उनकी बड़ी-भारी इज्जत है। बड़े भाई गुरुचरण उस घरके कर्ता-धर्ता । केवल घरके ही क्यों, उन्हें अगर सारे गाँवका कर्ता-धर्ता कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। बड़े आदमी तो और भी थे पर इतनी श्रद्धा भक्तिका पात्र श्रीकुंजपुरमें और कोई न था। अपने जीवनमें बड़ी नौकरी उन्होंने नहीं की,—गाँव छोड़कर अन्यत्र जानेको राजी हो जाते, तो उनके लिए वह दुष्प्राप्य नहीं थी। प्रथम यौवनमें वे जो एक बार निकटवर्ती जिला-स्कूलकी मास्टरीके काममें घुसे, सो किसी भी लोभसे उस शिक्षालयकी ममता छोड़कर अन्यत्र जानेके लिए राजी ही नहीं हुए। यहाँ उनकी तनखा तीससे बढ़ते-बढ़ते पचास रुपया हो गई थी, और अब उसकी आधी पचीस रुपया पेन्शन पाते हैं। तीन साल हुए, उन्होंने अवसर ग्रहण कर लिया है। संसारमें आज तक रुपया ही कभी उनके लिए सबसे बड़ी चीज नहीं हुई। अगर ऐसा न होता, तो झगड़ा मिटाने, मामलोंका फैसला करने कराने, दलबन्दीकी गुत्थियाँ सुलझानेमें उनका आदेश ही श्रीकुंजपुरमें सर्वमान्य नहीं हो सकता। उनकी असीम धर्मनिष्ठा, चरित्रकी दृढ़ता और अविचलित साधुताके सामने सभी कोई इज्जतके साथ सिर झुकाते हैं। उमर साठके लगभग होगी। अगर कोई आदमी चरित्र, साधुता या धार्मिकतामें ज्यादती दिखाता, तो आसपासके दस-बीस गाँवके लोग उसका यह कहकर मजाक उड़ाते कि "ओफ् हो, तुम तो एकदम गुरुचरण मालूम होते हो !"

गुरुचरणके स्त्री नहीं थी; केवल एक लड़का था विमल। संसारमें शायद अद्भुत कहलाने लायक सचमुच कुछ है ही नहीं, नहीं तो इतने बड़े और सर्वगुणसम्पन्न पिताके ऐसा सर्वदोष-सम्पन्न पुत्र कैसे हुआ,—कुछ समझमें नहीं आता।

पुत्रके साथ पिताका सांसारिक बन्धन नहीके बराबर था; उनका साराका सारा बन्धन जा पड़ा था भतीजे पारसपर। हरिचरणका बड़ा लड़का पारस

ही मानों उनका अपना लड़का हो। पारस एम० ए० पास करके कानून पढ़ रहा है,—उसे वर्ण-परिचयकी पहली पुस्तकसे लेकर आज तक सब-कुछ वे ही पढ़ाते आ रहे हैं। उनका यह दुःख कि विमलने कुछ नहीं सीखा, पारससे मिट गया।

२

छोटा भाई हरिचरण इतने दिनोंसे परदेशमें मामूली नौकरी ही कर रहा था। सहसा लड़ाईके बाद न-जाने कैसे वह बड़ा आदमी बन गया, और नौकरी छोड़कर घर चला आया। लोगोंको ऊँचे ब्याजपर रुपये उधार देने लगा, स्त्रीके नामसे एक बगीचा खरीद बैठा, और, और भी ऐसे ही न-जाने क्या-क्या काम करने लगा, जिससे उसके रुपयेकी गन्धको पाँच-सात गाँवके लोगोंकी नाक तक पहुँचते देर न लगी।

एक दिन हरिचरणने आकर विनयके साथ कहा, "भइया, बहुत दिनोंसे मै आपसे एक बात कहनेकी सोच रहा हूँ—"

गुरुचरणने कहा, "अच्छी बात है, कहो।"

हरिचरण बगलें झाँकता हुआ बोला, "आप अकेले अब और कितना कर सकेंगे, उमर भी काफी हो रही है—"

गुरुचरणने कहा, "सो तो है ही। साठवाँ साल चल रहा है।"

हरिचरणने कहा, "इसीसे कह रहा था, मैं तो अब घर ही रहूँगा; जमीन जायदाद सब गैर-सिलसिलेसे पड़ी है, जरा निशान लगा-लुगाकर मैं ही अगर—"

गुरुचरणने क्षण-भर अपने छोटे भाईके चेहरेकी तरफ देखकर कहा, "जमीन जायदाद तो अपनी मामूली ही है, और गर-सिलसिलेसे भी नहीं है,—लेकिन तुम क्या न्यारे होनेकी बात कह रहे हो?"

हरिचरणने मारे शरमके दातों-तले जीभ दबाकर कहा, "जी नहीं, नहीं—जैसा है, जैसा चल रहा है, सब वैसा ही रहेगा; सिर्फ जो कुछ अपने पास है, उसमें जरा निशान लगा लेना है; और रसोई-बसोई भी बड़े झंझटकी चीज है,—सब कुछ एकत्र ही रहेगा,—पर दाल और भात अलग-अलग कर लिया जाय,—आप समझे नहीं—"

गुरुचरणने कहा, "समझा क्यों नहीं, समझता तो हूँ ही। अच्छी बात है, कलसे ऐसा ही होगा।"

हरिचरणने पूछा, "निशान आप कैसे लगायेंगे, कुछ तय किया है ?"

गुरुचरणने कहा, "तय करनेकी तो अब तक कोई जरूरत नहीं पड़ी थी: पर यदि आज आ पड़ी है, तो तीनों भाइयोंके तीन हिस्से बराबर-बराबर बाँट देनेसे काम चल जायगा।"

हरिचरणने आश्चर्यके साथ कहा, "तीन हिस्से कैसे ? मझली बहू तो विधवा हैं, लड़का-बाला भी कोई नहीं, फिर उनका हिस्सा कैसा ? दो हिस्से होंगे।"

गुरुचरणने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, तीन हिस्से होंगे। मझली बहू मेरे श्यामाचरणकी विधवा है, जब तक जीवित रहेगी, हिस्सा तो पायगी ही।"

हरिचरण रुष्ट हो गया, बोला, "कानूनसे नहीं पा सकती, सिर्फ खाने-पहरनेको ले सकती है।"

गुरुचरणने कहा, "सो तो ले ही सकती है, क्योंकि घरकी बहू ठहरी।"

हरिचरणने कहा, "मान लीजिए, कलको अगर बेचना या गिरवी रख देना चाहे तो ?"

गुरचरणने कहा, "कानूनसे अगर ऐसा हक हासिल हो, तो करेगी।"

हरिचरणका चेहरा स्याह पड़ गया, बोला, "हूं, करेंगी क्यों नहीं !"

× × × ×

दूसरे दिन हरिचरण रस्सी और फीता हाथमें लिये घर-भरमें नाप-जोख करता फिरने लगा। गुरुचरणने न तो कुछ पूछा, और न बाधा ही डाली। दो-तीन दिन बाद ईंटें, काठ और बालू-चूना-सुर्खी भी आ पहुँची। घरकी पुरानी महरीने आकर खबर दी, "कलसे राज लग जायँगे, छोटे बाबूकी भींत खड़ी होगी।"

गुरुचरणने हँसते हुए कहा, "सो तो देख ही रहा हूँ, कहनेकी क्या जरूरत है !"

पाँच-छह दिन बाद, एक दिन शामको दरवाजेके बाहर पैरोंकी आहट सुनकर गुरुचरणने मुँह उठाकर पूछा, "पंचूकी माँ, क्या है ?"

पंचूकी माँ बहुत दिनोंकी पुरानी महरी है। उसने इशारेसे दिखाते हुए कहा, "मझली बहू खड़ी हैं बड़े बाबू।"

बड़ी बहूके मरनेके बादसे विधवा भ्रातृवधू ही इस गृहस्थीकी मालकिन हैं, वे ओटमें खड़ी होकर जेठके साथ बोलती हैं। उन्होंने मृदुकण्ठसे कहा,

"ससुरके घरमें क्या मेरा कुछ भी दावा नहीं, जो छोटी बहू मुझे रात-दिन गालियाँ दिया करती हैं?"

गुरुचरणने कहा, "है क्यों नहीं बहू! जैसा उनका है, ठीक वैसा ही तुम्हारा भी हक है।"

पंचूकी माँने कहा, "लेकिन इस तरह करनेसे तो घरमें टिकना मुश्किल है।"

गुरुचरण सब सुन रहे थे, क्षण-भर चुप रहकर बोले, "पारसको आनेके लिए चिट्ठी लिख दी है, पंचूकी माँ, उसके आते ही सब ठीक हो जायगा— तब तक तुम लोग जरा सहती रहो।"

मझली बहूने दुबिधा करते हुए कहा, "लेकिन पारस क्या—"

गुरुचरणने टोकते हुए कहा, "लेकिन कुछ नहीं, मझली बहू, मेरे पारसके विषयमें 'लेकिन' नहीं चल सकती। हरी उसका बाप जरूर है, पर वह लड़का मेरा ही है; सारी दुनिया एक तरफ हो जाय, तो भी वह मेरा ही रहेगा। उसके 'ताऊजी' कभी अन्याय नहीं करते, यह बात अगर वह न समझे तो समझो कि व्यर्थ ही मैंने इतने दिनों पराये लड़केको छातीसे लगाकर आदमी बनाया!"

दासीने कहा, "इसमें क्या कहना है! उस साल माता निकली थीं, तब तुम्हारे सिवा उसे जमराजके मुँहसे और कौन छीन सकता था, बड़े बाबू! तब कहाँ तो छोटे बाबू थे और कहाँ उसकी सौतेली माँ! मारे डरके कोई उसके पास तक न फटकता था। तब अकेले ताऊजी ही थे, क्या रात और क्या दिन।"

मझली बहूने कहा, "पारसकी माँ जीवित रहती, तो शायद उससे भी इतना करते न बनता।"

गुरुचरण संकोचमें पड़ गये, बोले, "रहने दो बेटी, ये सब बातें।"

उसके चले जानेपर वृद्ध गुरुचरणकी आँखोंके सामने मानों विमल और पारस दोनों पास-पास खड़े हो गये। जंगलेके बाहर अन्धकारमय आकाशकी तरफ देखकर उनके मुँहसे एक दीर्घ निःश्वास निकल पड़ा। उसके बाद मोटी बाँसकी लाठी उठाकर वे सरकारोंके बैठकखानेमें शतरंज खेलने चले गये।

दूसरे दिन दोपहरको गुरचरण रोटी खाने बैठे थे। मकानके उत्तर-तरफके बरामदेका कुछ हिस्सा घेरकर हरिचरणकी रसोईका काम चल रहा था। वहाँसे तीक्ष्ण नारी-कंठसे ऐसी-ऐसी कडुई बातें निकलती आ रही थीं, जिनका हद्दो-हिसाब नहीं। उनके भोजनमें काफी विघ्न हो रहा था; मगर उनमें जब

सहसा पुरुषका मोटा गला आ मिला, तब क्षण-भरके लिए उनके कान खड़े हो गये, और सुनकर सहसा वे उठके खड़े हो गये।

मँझली बहू ओटमेंसे हाय-हाय कर उठीं, और पंचूकी माँने मारे क्रोध और क्षोभके चीत्कार करके इस दुर्घटनाको प्रकट कर दिया।

आँगनमें खड़े होकर गुरुचरणने भाईको पुकारकर कहा, "हरिचरण औरतोंकी बातपर मैं ध्यान नहीं देना चाहता, पर तुम पुरुष होकर अगर विधवा बड़ी भौजाईका इस तरह अपमान करोगे, तो उसका फिर इस घरमें रहना नहीं हो सकता।"

इस बातका किसीने जवाब नहीं दिया; पर बाहर जानेके रास्तेमें उन्हें छोटी बहूका परिचित तीक्ष्ण कंठ सुनाई दिया; वह मजाक उड़ाती हुई कह रही थी, "इस तरह अपमान न किया करो, कहे देती हूँ। नहीं तो मँझली बहू घरमें ही न रहेंगी! तब क्या होगा?"

हरिचरण जवाब दे रहा था, "दुनिया रसातलमें डूब जायगी, और क्या होगा! कौन रहनेके लिए सरकी कसम दिला रहा है? चली जाय तो जान बचे।"

गुरुचरण ठिठककर खड़े हो गये, और उन लोगोंकी बातचीत खत्म हो जाने पर चुपचाप बाहर चले गये।

३

हेडमास्टर साहबकी कन्याके विवाहमें शामिल होनेके लिए गुरुचरण कृष्णनगरको रवाना हो रहे थे, इतनेमें अचानक सुना कि पारस घर आ गया है, और आते ही बुखारमें पड़ गया है। वे घबराये हुए पारसके कमरेमें घुस रहे थे कि सामने छोटे भाईको देखकर पूछ उठे, "पारसको बुखार आ गया है क्या?"

हरिचरण 'हूँ' कहकर चला गया। छोटी बहूको मायकेकी नौकरानीने सामने रास्ता रोककर कहा, "आप भीतर मत जाइए।"

"न जाऊँ? क्यों?"

"भीतर दीदीजी बैठी हैं।"

"उन्हें जरा हट जानेको कह दे न।"

नौकरानीने कहा, "हट कहाँ जायँगी, लड़केके माथेपर हाथ फेर रही हैं।" कहकर वह अपने कामसे चली गई।

गुरुचरण स्वप्नाच्छन्नकी भांति क्षणभर खड़े रहे, फिर पारसको पुकारकर बोले, "कैसी तबियत है बेटा ?"

भीतरसे इस व्याकुल प्रश्नका कोई जवाब न आया, मगर नौकरानीने कहींसे जवाब दिया, "भइयाजीको बुखार है; सुन तो लिया है !"

गुरुचरण स्तब्ध होकर दो तीन मिनट तक वहीं खड़े रहे; फिर धीरेसे बाहर चले आये; और किसीसे कोई बात न करके सीधे रेल्वे स्टेशनकी तरफ रवाना हो गये।

वहाँ ब्याहकी धूम-धाममें किसीने कुछ ध्यान नहीं दिया: परन्तु काम-काज निबट जाने पर उनके बहुत दिनोंके मित्र हेडमास्टर साहबने एकान्तमें ले जाकर उनसे पूछा, "क्या बात है गुरुचरण ? सुना है कि हरिचरण तुम्हारे बहुत पीछे पड़ा है ?"

गुरुचरणने अन्यमनस्ककी भांति कहा; "हरिचरण ? नहीं तो !"

"नहीं तो क्या जी ? हरिचरणकी शैतानीका हाल तो सभी सुन चुके हैं।"

गुरुचरणको सहसा सब बातें याद आ गईं: बोले "हाँ हाँ, जमीन-जायदादके बारेमें हरिचरण कुछ गड़बड़ी कर रहा है।"

उनकी बातके ढंगसे हेडमास्टर क्षुण्ण हुए। दोनों बचपनके निष्कपट मित्र हैं, फिर भी गुरुचरण भीतरकी बातको उदासीनताके आवरणमें छिपाना चाहते हैं—इस बातका ख्याल करके फिर उन्होंने कोई बात नहीं पूछी।

गुरुचरणने कृष्णनगरसे घर वापस आकर देखा कि उनकी इन कई दिनों-की अनुपस्थितिमें मौका पाकर हरिचरणने आँगनमें जगह-जगह गड्ढे खोद-खादकर ऐसा हाल कर रखा है कि कहीं पैर रखनेको जगह नहीं। वे समझ गये कि वह अपनी मरजी और सहूलियतके माफिक घरका बँटवारा करके बीच-में दीवार खड़ी करेगा। उसके पास रुपया है, लिहाजा; किसी औरके मतामत-की उसे जरूरत नहीं।

वे अपने कमरेमें जाकर कपड़े बदल रहे थे, इतनेमें मझली बहूको साथ लिये पचूकी माँ आ खड़ी हुई। गुरुचरण समाचार पूछना चाहते थे कि वह अकस्मात् अस्फुट आर्तकंठसे रोने लगी; और रोते-रोते ही उसने बताया कि परसों सबेरे मझली बहूजीको छोटे बाबूने गरदन पकड़कर धक्का देते हुए घरसे बाहर निकाल दिया था, और वह मौजूद न होती तो शायद मार-मार कर अधमरी कर डालते।

घटना पूरी तरहसे समझनेमें गुरुचरनको ज्यादा देर न लगी। फिर भी वे मिट्टीके पुतलेकी तरह निर्वाक् और निस्पन्द रहकर सहसा पूछ उठे, "सचमुच ही क्या हरिचरणने तुम्हारी देहको हाथ लगाया था, बहूरानी ! लगा सका वह ?"

थोड़ी देर बाद पूछा, "जान पड़ता है तब पारस शायद खाटपर पड़ा होगा ?"

पंचूकी माँने कहा, "उन्हें तो कुछ हुआ ही नहीं बड़े बाबू, अभी आज ही तो सबेरेकी गाड़ीसे कलकत्ता चले गये हैं।"

"कुछ हुआ नहीं ? तो वह अपने बापकी करतूत जानकर गया है ?"

पंचूकी माँने कहा, "हाँ, सभी कुछ।"

गुरुचरणके पैरोंके नीचेसे जमीन खिसक गई। बोले, "बहूरानी, इतने बड़े अपराधकी सजा अगर उसे न मिले, तो इस घरमें मेरा रहना उठ गया समझ लो। चलो अभी समय है, मैं गाड़ी लिए आता हूँ, तुम्हें अदालत चलकर नालिश करनी होगी।"

अदालत जाकर नालिश करनेके नामसे मझली बहू चौंक पड़ी। गुरुचरणने कहा, "गृहस्थीकी बहू-बेटियोंके लिए यह काम सम्मान-जनक नहीं, यह मैं जानता हूँ, पर इतना बड़ा जबरदस्त अपमान अगर चुपचाप सह लोगी बेटी, तो भगवान तुमसे नाराज हो जायँगे। इससे ज्यादा बात और मै नहीं जानता।"

मझली बहू जमीनसे उठकर खड़ी हो गई, बोली, "आप पिताके समान हैं। मुझे जैसी आज्ञा देंगे, मैं बिना किसी संकोचके उसका पालन करूँगी।"

हरिचरणके खिलाफ मुकदमा दायर हुआ। गुरुचरणने अपनी पुराने जमानेकी सोनेकी जंजीर बेचकर बड़े वकीलकी मोटी फीस दाखिल कर दी।

निर्दिष्ट दिनको मामलेकी सुनवाई हुई। प्रतिवादी हरिचरण हाजिर हुआ मगर वादिनी नहीं दिखाई दी। वकीलने न-जाने क्या कहा-सुना, हाकिमने मुकदमा खारिज कर दिया। भीड़में गुरुचरणकी अचानक निगाह पड़ गई पारसपर। तब वह मुँह फेरकर मन्द-मन्द हँस रहा था।

गुरुचरणने घर आकर सुना कि मायकेसे किसीकी जबरदस्त बीमारीकी खबर पाकर मझली बहू बगैर नहाये-धोए, यों ही गाड़ी बुलवाकर वहाँ चली गई हैं।

पंचूकी मा हाथ-पैर धोनेको पानी देने आई और सहसा रोकर कहने लगी "रात भी झूठा, दिन भी झूठा,—तुम और कहीं चले जाओ बड़े बाबू, इस पापी संसारमें तुम्हारे रहनेकी जगह नहीं है।"

ढोल आये, नगाड़े आये, मजीरा आये,—मुकदमा जीत जानेकी खुशीमें हरिचरणके घर शुभचण्डीकी पूजाके ऐसे बाजे बजे कि सारा गाँव उथल पुथल हो उठा।

४

दो भागोंमें विभक्त पैतृक मकानके एक हिस्सेमें रहा हरिचरणका परिवार और दूसरेमें रहे गुरुचरण और उनकी बहुत दिनोंकी पुरानी दासी पंचूकी मा।

दूसरे दिन सबेरे पंचूकी माँने आकर कहा, "रसोईका सब सामान जुटा दिया है बड़े बाबू!"

"रसोईका? ओ—हाँ—ठीक है,—चलो मैं आया। कहकर गुरुचरण उठना ही चाहते थे कि दासीने कहा, "कोई जल्दी नहीं है बड़े बाबू, जरा दिन चढ़ने दीजिए बल्कि तब तक आप गंगा स्नान कर आइए।"

"अच्छी बात है जाता हूँ।"—कहकर गुरुचरण पलक मारते ही गंगा-स्नानके लिए जानेको तैयार हो उठ खड़े हुए। उनके काम या बातमें कहीं कुछ भी असंगति नहीं थी, फिर भी पंचूकी माँको न जाने कैसा बहुत बुरा-सा मालूम दिया। उसे बार-बार यही खयाल आने लगा—मानों ये पहलेके वे बड़े बाबू नहीं रहे।

पंचूकी मा भीतर जाकर चिल्ला चिल्लाकर कहने लगी, "कभी भला न होगा! हरगिज भला न होगा! इसकी सजा भगवान देंगे ही देंगे!"

किसका भला न होगा और किसे भगवान सजा देंगे ही देंगे, ठीक समझमें न आया; लेकिन उस दिन छोटे बाबूकी तरफसे इस बारेमें झगड़ा करनेको कोई तैयार नहीं हुआ।

इसी तरह दिन कटने लगे।

गुरुचरणकी एक मात्र सन्तान विमलचन्द्र सुसन्तान नहीं, वे इस बातको अच्छी तरह जानते थे। कई मास पहले कुछ घंटोंके लिए एक बार वह घर आया था, फिर उसके दर्शन ही नहीं हुए। उस बार एक बैगमें छिपाकर न जाने क्या क्या रख गया था। उसके चले जाने पर गुरुचरणने पारसको बुलाकर कहा था, "देख तो बेटा, क्या है इसमें?" पारसने अच्छी तरह देख-भालकर कहा था, "कुछ कागजात हैं, शायद दस्तावेज होंगे। ताऊजी इन्हें जला दूँ?"

गुरुचरणने कहा था, "अगर जरूरी हुए तो?"

पारसने कहा था, "जरूरी तो हैं ही, पर विमल-भइयाके लिए शायद गैर-जरूरी हैं। आफतको जरूरत क्या है घरमें रखनेकी?"

गुरुचरणने आपत्ति की थी, "बगैर जाने नष्ट नहीं करना चाहिए, पारस, किसीका सत्यानाश भी हो जा सकता है। इन्हें तू कहीं छिपाकर रख दे बेटा, पीछे देखा जायगा।"

इस घटनाकी उन्हें याद नहीं थी। आज सबेरे गंगा-स्नानसे लौटकर रसोई बनाने जा रहे थे, इतनेमें अकस्मात् बैग लिये हुए पारस, हरिचरण, गाँवके और भी कई सज्जन और पुलिस आ खड़ी हुई।

घटना सक्षेपमें यह है कि विमल डकैतीका असामी है, फिलहाल फरार है। अखबारोंमें खबर पढ़कर पारसने पुलिसको सब बातें जता दी हैं। बैग अब तक उसीके पास था। विमल खराब लड़का है, शराब पीता है, आनुषंगिक और भी अनेक दोष हैं। कलकत्ता रहकर कोई मामूली-सी नौकरी करके वह ये सब काम किया करता है। मगर वह डकैती कर सकता है, ऐसा सन्देह पिताके मनमें कभी स्वप्नमें भी न हुआ था। कुछ क्षण वे एकटक पारसके चेहरेकी तरफ देखते रहे, उसके बाद उनकी निष्प्रभ निर्निमेष दोनों आँखोंके कोनोंसे झर-झर आँसू टपकने लगे। बोले, "सब सच है, पारसने एक बात भी झूठ नहीं कही!"

दारोगाने और भी दो-चार बातें पूछकर उन्हें छुट्टी दे दी। जाते समय उसने सहसा झुककर गुरुचरणके पाँव छुए, और कहा, " आप उम्रमें बड़े हैं और ब्राह्मण हैं, मेरा कसूर ध्यानमें न लाइएगा। इतने भारी दुःखका काम मैंने इसके पहले कभी नहीं किया।"

और भी, कई महीने बीत जानेपर खबर आई कि विमलको सात सालकी सजा हो गई है।

५

फिर ढोल, नगाड़े और मजीरा बजाकर समारोहके साथ शुभचण्डीकी पूजाकी तैयारियाँ होने लगीं। पारसने कहा, "बाबूजी, यह सब रहने दो।"

"क्यों?"

पारसने कहा, "यह मुझसे सहन नहीं होगा।"

बापने कहा, "अच्छी बात है, सहन न कर सको, तो आजका दिन

कलकत्ता जाकर घूम-फिरकर बिता आओ। जगन्माताकी पूजा है,— धर्म-कर्ममें बाधा मत डालो।"

कहना न होगा कि धर्म-कर्ममें कोई बाधा नहीं आई।

दसेक दिन बाद, एक दिन सबेरे गुरुचरणके घरकी तरफ अकस्मात शोर-गुल और चीख-चिल्लाहट सुनाई दी, और कुछ देर बाद ग्वालिन रोती हुई आ खड़ी हुई। उसकी नाकसे खून बह रहा था। हरिचरणने घबराहटके साथ पूछा, "खून कैसे आ गया मोक्षदा? बात क्या है?"

रोनेकी आवाज सुनकर घरके सभी आ पहुँचे। मोक्षदाने कहा, "दूधमें पानी मिलाया था, इसलिए बड़े बाबूने लात मारकर मुझे गड्ढेमें गिरा दिया।"

हरिचरणने कहा, "किसने, किसने? भइयाने? हट—"

पारसने कहा, "ताऊजीने? झूठ बोलती है।"

छोटी बहूने कहा, "जेठजी औरतोंकी देहसे हाथ लगायेंगे? तू क्या सपना देख रही है दूधवाली?"

उसने अपनी देहपर कीच-मिट्टी दिखाते हुए देवी देवताओंकी कसम खाकर कहा कि सच्ची बात है।

'इंजक्शन' की कृपासे दीवारका उठना तो बन्द हो गया था, पर आगनके गड्ढे सब ज्योंके त्यों बने हुए थे, मूँदे नहीं गये थे। गुरुचरणके लात मारनेपर उन्हींमेंसे एकमें गिर जानेसे उसे चोट आ गई थी।

हरिचरणने कहा, "चल मेरे साथ, नालिश कर दे।"

स्त्रीने कहा, "कैसी असंभव बात कहते हो तुम! जेठजी औरतोंकी देह-पर हाथ लगायेंगे? झूठी बात है।"

पारस स्तब्ध होकर खड़ा रहा, एक शब्द भी न बोला।

हरिचरणने कहा, "झूठी होगी, हार जायगी। लेकिन भइयाके मुँहसे तो झूठ निकल नही सकता। मारा होगा तो सजा हो जायगी।"

युक्ति सुनकर स्त्रीमें सुबुद्धि आ गई, बोली, "है तो ठीक। ले जाकर नालिश करवा दो। ठीक, सजा हो जायगी।"

हुआ भी यही। भइयाके मुँहसे झूठ न निकला। अदालतके न्यायसे उनपर दस रुपया जुरमाना हो गया।

अबकी बार शुभचण्डीकी पूजा तो नहीं हुई, मगर दूसरे दिन देखा गया कि कुछ लड़के झुण्ड बाँधकर गुरुचरणके पीछे-पीछे शोर-गुल मचाते और बकते हुए जा रहे हैं! ग्वालिनको मारनेका गीत भी इतनेमें, बन गया है!

६

रातके करीब आठ बजे होंगे हरिचरणकी बैठक भरी हुई है। गाँवके मुरव्बी लोग आजकल यहीं आने लगे हैं। अकस्मात एक आदमीने आकर एक बड़े मजेकी खबर सुनाई। लुहारोंके लड़कोंने विश्वकर्मा-पूजाके उत्सवमें कलकत्तेसे दो जनी खेमटा नाचनेवाली बुलाई हैं, उन्हींके नाचकी महफिलमें गुरुचरण बैठे हैं!

हरिचरण हँसते-हँसते लोट-पोट हो गया। बोला, "पागल है! पागल! इसकी बात तो सुनो! भइया खेमटा नाच देख रहे हैं! किस चण्डूखानेसे आ रहे हो अविनाश?"

अविनाशने कसम खाकर कहा, "अपनी आँखोंसे देख आया हूं।"

एक आदमी दौड़ा गया—सच्ची खबर लानेके लिए। दसेक मिनट बाद वह लौट आया, और बोला कि हाँ, बिलकुल सच बात है, और सिर्फ नाच ही नहीं देख रहे, बल्कि रूमालमें बाँधकर उन्हें न्योछावर देते हुए भी वह अपनी आँखोंसे देख आया है।

बस फिर क्या था, एक जोरका शोरोगुल उठ खड़ा हुआ। किसीने कहा, 'किसी दिन ऐसा होगा ही, यह तो जानी हुई बात थी!' कोई कहने लगा 'जिस दिन बिना कुसूर औरतकी देहपर हाथ लगाया था, उसी दिन हम समझ गये थे!' एकने लड़केकी डकैतीका उल्लेख करते हुए कहा—'उसीसे बापके चरित्रका अन्दाजा हो सकता है!' इसी तरहकी न जाने कितनी तरहकी बातें होने लगीं।

आज, कुछ बोला नहीं तो सिर्फ एक हरिचरण। वह अन्यमनस्क-सा होकर चुपचाप बैठा रहा। उसे न जाने कैसे, मानों आज बचपनकी याद आने लगी—क्या ये ही उसके भइया हैं? क्या ये ही गुरुचरण मजूमदार हैं?

७

रातके करीब दो-ढाई बजे होंगे, पर नाच खत्म होनेमें अब भी देर है। विश्वकर्मा-पूजा जल्दी ही खत्म हो चुकी थी; पर उसकी 'जूनी बाकी' अब भी चल रही थी, जिसे भक्त लोग शराब पीकर, मांस खाकर, रंडी नचाकर दक्ष-यज्ञके रूपमें पूरा कर रहे थे। अधिकांश लोग अपना होश-हवास खो बैठे थे, और उन्हींके बीचमें बैठे मुसकरा रहे थे वृद्ध गुरुचरण।

इतनेमें कोई चादरसे मुँह ढँके हुए वहाँ आया, और धीरेसे उसने उनकी पीठपर हाथ रखा। वे चौंक पड़े, बोले, "कौन?"

उसने कहा, "मैं हूँ पारस। ताऊजी, घर चलिए।"

गुरुचरणने कोई भी आपत्ति नहीं की, बोले, "घर? चलो।"

उत्सव-मंचका जरा-सा क्षीण प्रकाश रास्तेपर आ पड़ा था, वहाँ पहुँचकर पारस एकटक 'ताऊ' के चेहरेकी तरफ देखता रहा। आँखोंमें वह ज्योति नहीं, चेहरेपर वह तेज नहीं, नीचेसे ऊपर तक साराका सारा आदमी भूताविष्ट-सा हो गया है। इतने दिनों बाद उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे; और इतने दिनों बाद आज उसकी आँखें देख सकीं कि लोगोंके आगे लज्जित होने लायक 'ताऊजी' में कोई चीज बाकी नहीं रही है। इस अर्ध-सचेतन देहको छोड़कर वे और कहीं चले गये हैं। उसने कहा, "आपकी काशी जानेकी बड़ी इच्छा थी, ताऊजी, चलिएगा?"

गुरुचरण कंगालकी तरह बोल उठे, "जाऊँगा पारस, जाऊँगा। पर कौन ले जायगा मुझे?"

पारसने कहा, "मैं ले जाऊँगा, ताऊजी।"

"तो चल एक बार, घर चलकर चीज-वस्त ले आयें जाकर।"

पारसने कहा, "नहीं ताऊजी, उस घरमें अब नहीं जाना है। वहाँका अब कुछ भी नहीं चाहिए हमें।"

गुरुचरणको सहसा मानों होश आ गया: क्षण-भर नीरव रहकर बोले, "कुछ नहीं चाहिए? उस घरका अब हम कुछ नहीं चाहते?"

पारसने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा, "नहीं ताऊजी, कुछ नहीं चाहिए। उन चीजोंको लेनेवाले और बहुत हैं वहाँ, चलिए।"

"चलो।"—कह कर गुरुचरणने पारसका हाथ पकड़ा; और जनशून्य अन्धकारमय रास्तेसे दोनोंके दोनों रेल्वे-स्टेशनकी तरफ चल दिये।

समाप्त